युगवीर-समन्तभद्र-ग्रन्थमाला–५

नयी किरण : नया सवेरा

तीर्थङ्कर वर्द्धमान महावीर और
महावीरकालीन घटनाओंपर आधारित ऐतिहासिक
उपन्यास

श्री मिश्रीलाल जैन, एडवोकेट
गुना (म. प्र.)

भगवान् महावीरके २५०० वे निर्वाणोत्सवके उपलक्ष्यमे

वीर-सेवा-मन्दिर-ट्रस्ट-प्रकाशन

प्रकाशक

मत्री, वीर-सेवा-मन्दिर-ट्रस्ट

ट्रस्ट-संस्थापक

आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'

●

प्राप्तिस्थान

१. मत्री, वीर-सेवा-मन्दिर-ट्रस्ट,
चमेली-कुटीर,
बी. १/१२८, डुमराव बाग, अस्सी, वाराणसी–५

२. डॉ० श्रीचन्द जैन सगल,
कोषाध्यक्ष, वीर-सेवा-मन्दिर-ट्रस्ट
जी० टी० रोड, एटा (उ० प्र०)

●

प्रथम सस्करण . ११०० प्रति

महावीर-जयन्ती, वी० नि० सं० २५००

४ अप्रैल, १९७४

मूल्य दो रुपये मात्र।

●

मुद्रक :

एजूकेशनल प्रिंटर्स

गोला दीनानाथ, वाराणसी-२२१००१

विश्वहितैषी आध्यात्मिक सन्त

मुनि श्रीविद्यानन्दजी

के

करकमलोंमें

सभक्ति समर्पित

प्रकाशकीय

जैन साहित्य और इतिहासके मर्मज्ञ एवं अनुसन्धाता पुरातत्त्व-विद्या-महार्णव स्वर्गीय आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर' द्वारा संस्थापित एवं प्रवर्तित **वीर-सेवा-मन्दिर**[1] सरसावा (सहारनपुर) के संरक्षण-सवर्धनके लिए उन्ही द्वारा निर्मित **वीर-सेवा-मन्दिर-ट्रस्टसे** इत. पूर्व ११ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोका प्रकाशन हो चुका है, जो निम्न प्रकार है—

१. युगवीर-निबन्धावली प्रथम भाग :	मार्च १९६३
२. ,, ,, द्वितीय भाग :	दिसम्बर १९६७
३. **तत्त्वानुशासन** :	दिसम्बर १९६३
४. **समाधिमरणोत्साहदीपक** :	सितम्बर १९६४
५. **देवागम** (आप्तमीमासा) :	जून १९६७
६. **जैन तर्कशास्त्रमे अनुमान-विचार** :	मई १९६९
७. **लोकविजय-यत्र** :	अप्रेल १९७१
८. **प्रमाण-नय-निक्षेप-प्रकाश** :	दिसम्बर १९७०
९. **प्रमेय-कण्ठिका** :	मार्च १९७२
१०. **रत्नकरण्डकश्रावकाचार** :	अगस्त १९७२
११. **प्रमाण-परीक्षा** :	अक्तूबर १९७३

आज भगवान् महावीरकी २५००वी निर्वाण-शतीकी मंगल-वेलामे जिस कृतिका प्रकाशन ट्रस्टसे हो रहा है वह है **'नयी किरण : नया सबेरा'**। इसके रचयिता है हिन्दी-जगत् और समाजके नवोदीयमान लेखक श्रीमिश्रीलालजी एडवोकेट, गुना। आप कार्यसे विधि-वेत्ता है किन्तु रुचिसे नये साहित्य-सृष्टा है। अद्भुत प्रतिभा और आध्यात्मिक रुचि दोनोने उन्हे लोक-कल्याणी साहित्यके सृजनकी ओर मोड दिया है। हिन्दी

---

१. इसका एक कार्यालय व भवन २१ दरियागंज दिल्ली-६ मे है।

गद्य एवं पद्य दोनोमे आपकी आशु गति है। हमे प्रसन्नता है कि आपकी रचनाएँ धर्म-तत्त्वपर आधृत है और इसकी उन्होने आज बडी आवश्यकता अनुभव की है।

'नयी किरण नया सवेरा' मे भगवान् महावीरसे सम्बन्धित और उनके उपदेशोसे अनुप्राणित कतिपय घटनाओका सप्राण चित्रण हुआ है, जो बच्चो, बूढो, स्त्रियो और तरुणोके लिए बडा उपयोगी और लाभ-दायक सिद्ध होगा। हम इस उत्तम कृतिको प्रस्तुत करनेके लिए लेखकके यशस्वी उत्कर्षकी मंगल-कामनाओके साथ उन्हे हार्दिक धन्यवाद देते है।

फाल्गुनी अष्टाह्निका
१३, वीर नि. स. २५००,
६ मार्च, १९७४

(डॉ.) दरबारीलाल कोठिया
मत्री, वीर-सेवा-मन्दिर-ट्रस्ट

अपनी बात

तीर्थङ्कर वर्द्धमान महावीरने लोककल्याणकी लिपिमे मानवके अधरोको नूतन छन्द दिये। इतिहासके पृष्ठोपर पावन हस्ताक्षर किये। महावीरकालीन पीढीने उपकृत हो प्रभुका दिव्य सन्देश और उनके जीवनकी पावन घटनाओको अनुवर्ती पीढीको सौपा, फिर एक पीढ़ी दूसरी पीढीको प्रभुका जीवन-वृत्त और दिव्य-सन्देश सौपती गई। श्रुतके आधारपर मनीषियोने तीर्थङ्करोकी वाणीको सुरक्षित रखा। आचार्योने काटोकी तूलिसे भगवानके पावन जीवन-चरित और सन्देशोको अंकित कर ताडपत्रके वक्षोको सुशोभित किया। शिल्पियो-की छेनियाँ भी निष्क्रिय नही रही, पाषाण भी प्रभुकी अनुकृति या वन्दनीय हो उठे। कालके गर्भमे कोटि-कोटि व्यक्तियोकी गाथाएँ अतीतकी चादर ओढकर सो गईं। सम्राटोके कीर्तिस्तम्भ शिलालेख खोजनेपर भी अनुपलब्ध है, किन्तु ज्यो-ज्यो समय बीतता गया, तीर्थङ्कर वर्द्धमान महावीरके त्याग, तप और संयमकी गाथाएँ जनप्रिय और प्रेरणाका स्रोत बनती गई। प्रभुके दिव्य सन्देश समयकी सीमाको लाँघकर हिंसासे विपाक्त आधुनिक युगको भी सुख-शान्तिका निश्चित आश्वासन प्रदान करते है। २५०० वर्षकी दीर्घ अवधि बीतनेपर भी विश्वस्तरीय निर्वाण-महोत्सवका आयोजन प्रभुके सन्देशोकी उपयोगिता-का सहज साक्षी है।

समयकी आवश्यकताके अनुसार भगवान महावीरके जीवनवृत्त और सन्देशोको राष्ट्रभाषा हिन्दीमे गुम्फित करनेकी ओर विद्वानोका ध्यान गया है, किन्तु उपन्यासकी विधा भगवानके जीवनवृत्तके पावन स्पर्शसे वञ्चित थी। वर्तमान युगमे उपन्यासोके पढ़नेका प्रचलन अधिक है। 'नयी किरण : नया सवेरा' उपन्यासके रूपमे २५सौवें निर्वाणोत्सवके पावन अवसरपर अपने आराध्य तीर्थङ्कर वर्द्धमान महावीरके श्रीचरणोमे श्रद्धा-भक्ति संवलित प्रसून इस आशासे अर्पित

कर रहा हूँ कि भविष्यमे देशके समर्थ उपन्यासकार भी तीर्थङ्कर महावीरके पवित्र जीवनको उपन्यासके रूपमे प्रस्तुत कर अपनी लेखनीको सार्थक करेंगे ।

गुनाके समीप वदखासमे चातुर्मासहेतु इन्दौरकी ओर विहार करते हुये मुनि श्रीविद्यानन्दजीके प्रथम दर्शन किये, प्रथम बार प्रवचन सुना । उनकी स्नेह और वात्सल्यभरी वाणीने आगम-साहित्यकी सेवामे समर्पित होनेका मंगल-पाठ पढाया । प्रस्तुत उपन्यास मुनिश्रीके आशीर्वादकी सुवास है । मै मात्र निमित्त हूँ । विद्यानन्दजीके प्रथम दर्शनोके पश्चात् श्रमण-साहित्यकी सेवाका भाव जागृत हुआ, उसका निर्वाह आज तक निष्ठापूर्वक कर रहा हूँ ।

प्रस्तुत कृतिमे घटनायें ऐतिहासिक तथ्योपर आधारित है, मात्र कवि रविदत्त तथा ज्ञानदेव जैसे कुछ पात्र काल्पनिक पात्र है । उपन्यासकी रुचिरताके लिए उनका सन्निवेश किया गया है ।

श्रद्धेय डा० दरबारीलालजी कोठियाका सहज स्नेह और आशीर्वाद मुझे प्राप्त है । कथा, काव्य और उपन्यासके सृजनमे उन्होने मुझे सदैव प्रोत्साहन दिया है । **'नयी किरण नया सबेरा'** को वीर-निर्वाण-महोत्सवके उपलक्ष्यमे प्रकाशित होनेवाले विशिष्ट ग्रन्थोकी सूचीमे सम्मिलितकर उन्होने विशेष कृपा की है । मैं उनके इस स्नेह और आशीर्वादको धन्यवाद देकर कम नही करना चाहता और आशा करता हूँ कि वे ऐसी ही आत्मीयता सदैव बनाये रखेंगे ।

तीर्थंकर महावीरका स्मरण करनेसे वाणी पवित्र होती है, जीवन सार्थक होता है । इस भावनासे उपन्यास पाठकोके समक्ष प्रस्तुत है ।

पृथ्वीराज मार्ग
गुना (म० प्र०) —मिश्रीलाल जैन
फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी, वीर नि० सं० २५००

निशाकी नीरवता सघन हो उठी थी। कोलाहल साँसे तोड चुका था। वज्जिगणतन्त्रके प्रजावत्सल नृप सिद्धार्थके शासनकालमें प्रजा आश्वस्त हो निश्चित शिशु-सी सुखमय निद्राका अनुभव करती थी। सम्पूर्ण राज्य निद्रादेवीकी सुखद क्रोड़में निमग्न था, किन्तु आश्चर्य, स्वयं कुण्डलपुरके सप्तखड नन्दावर्त राजमहलके सुसज्जित शयन-कक्षमे एक तेजस्वी युवक जाग रहा था। कक्षके एक छोरसे दूसरे छोर तक परिक्रमा दे रहा था। शय्या सूनी पड़ी थी। पर्यकके आस्तरणपर सलवट तक नही पड़ी थी। बहुमूल्य कम्बलकी तह तक नही खोली गई थी। शयन-कक्षके सभी वातायन खुले पड़े थे। कम्पित कर देनेवाले शीत पवनके झोंके रुक-रुककर कक्षमे प्रवेश कर रहे थे। शीत पवनके झोकोंसे युवकका उत्तरीय दूर जा गिरा था, किन्तु युवकको उसे उठानेकी सुधि तक नही थी। कक्षमें अगणित स्वर्णिम लघु प्रदीप जल रहे थे। पवनके झोंकोसे प्रदीप एक-एककर बुझते चले जा रहे थे। ज्यो ही कोई घृत-प्रदीप बुझता, युवकके पाँव थम जाते, उसका चिन्तन गहन हो उठता। वह सोचता, "लघु प्रदीपोंकी भाँति किसी दिन जीवनका प्रदीप भी बुझ जायेगा। इन जलते हुए प्रदीपोंमेंसे यह नही कहा जा सकता कि कौन-सा प्रदीप किस समय बुझेगा? जिन प्रदीपोका स्नेह समाप्तप्रायः हो चुका है, वे प्रदीप जल रहे है और जिन प्रदीपोंमे स्नेह और बाती पर्याप्त है वे बुझ रहे हैं। यह सत्य मानव देहके

साथ भी सत्य है। बुझनेके पूर्व शाश्वत ज्ञान-ज्योतिको उपलब्ध नही किया और जीवन-दीप बुझ गया तो अनन्त काल तक प्रकाश-की खोजमे अन्धकारमें भटकना होगा। सहसा युवककी दृष्टि पश्चिमी गवाक्षकी ओर गई। झिलमिलाते हुए तारोमे एक तारा टूटा, उसके प्रकाशसे एक क्षण युवककी आँखें चौंधिया गईं, दूसरे क्षण प्रकाश-रेखा विलीन हो चुकी थी। असीम तारोसे आकीर्ण आकाशमे उसके अस्तित्वके अभावका कोई बोध नही हो रहा था, उसे लगा, ये लघु सकेत जीवनके बहुत बड़े रहस्योका उद्घाटन कर रहे हैं। प्रतीक्षाको समय कहाँ? उस युवकका चिन्तन और भी गम्भीर हो उठा, उसे लगा कि उसने वह क्षण पा लिया है जिसकी उसे प्रतीक्षा थी। उसकी एक दृष्टि ससारकी नश्वरतापर जा टिकी और दूसरी भावनाओकी असीम गह-राइयोमे शाश्वत सुखकी खोजमे व्याकुल हो डूबती चली गई। मृत्युके द्वारसे निकलकर जन्मके द्वारपर दस्तक देना, जन्मके द्वारसे मृत्युकी अनिश्चित यात्रा करना। इन्द्रिय-जनित सुख-दुःखोकी मिथ्यानुभूतिमे सुख-दु.ख मानकर दुर्लभ मानव जीवनको निरर्थक बनाना, क्या वास्तविक जीवन है? देह तो नश्वर है, देहको शाश्वत बनानेका प्रयत्न और पुरुषार्थ समयका दुरुपयोग है। चिरन्तन है, आत्मा।

परिवर्तनशील प्रकृतिने सदैवकी भाँति दृश्य बदला। अन्ध-कारके साम्राज्यपर प्रकाशका अधिकार होने लगा। ब्राह्ममुहूर्त्त, मे शय्या त्याग प्रजा अपने दैनिक कार्योमे प्रवृत्त होने लगी। पक्षियोका मधुर कलरव प्रारम्भ हुआ। गायोके बछडोके रँभानेकी ध्वनि आने लगी। चक्कीके घर-घरके स्वरोके साथ नारीके कल-कठोसे नि.सृत भक्ति-गीतोके मधुर स्वर कक्ष तक आने लगे। युवककी एकाग्रता टूटी। अविरल-चिन्तनधारामे

तन्मयतासे मग्न युवकको रात्रिके व्यतीत हो जानेका ज्ञान हुआ। युवकको लगा इस सूर्योदयके साथ-साथ ही उसे भी ज्ञान-रश्मियोंकी खोजमें ज्ञान-सूर्यकी उपलब्धिके लिए जीवन-दिशा मोड़ लेना चाहिए। कही ऐसा न हो कि राजसत्ता, विलास और वैभवभरे राज-प्रासादके आकर्षण तेरे संकल्पोको निगल जाएँ। पाप-मार्गकी ओर पग बढता है तो बढ़ता ही चला जाता है। ससारका मार्ग चिर परिचित है। इस मार्गमें मिलनेवाला नारीका आकर्षण, वासनाका मृग-जल और अपने-परायोका सहयोग शीघ्र ही मृत्युके गतव्य तक पहुँचा देता है। सहसा प्रातःकी बाल-रश्मियोंने युवककी कामदेव-सी रूपवान देहको छुआ। युवक चौक उठा और बोला, "सूर्यकी सुहागिन बेटियो ! भविष्यमें वैशालीका राजकुमार वर्द्धमान महावीर तुम्हे इस कक्षमे नहीं मिलेगा। वह अब समयपर शाश्वत शिलालेख लिखने जा रहा है। उसे ज्ञान-रश्मियोकी, केवलज्ञान-रविकी खोजमें जाना है। अब वह बीहड़ वनोमें, पर्वतोपर, सरिताओके कूलोंपर मिलेगा। विविध रंगकी रश्मियोंको देखकर लगा जैसे वे कह रही हों, इस मंगल-मार्गमें हम तुम्हारा मार्ग प्रशस्त करेगी।

सहसा रश्मि नामक सेविकाने कक्षमें प्रवेश किया। कुछ क्षण वह मौन खड़ी रही, फिर अभिवादन कर बोली, "स्वामी प्रभात हो रहा है।"

वर्द्धमान महावीरने कहा, "रश्मि! प्रभात हो चुका है। आजके प्रभातमें वाह्य और अन्तर दोनों ही प्रकाशमान हो रहे है।"

रश्मिने कहा, "स्वामी नित्य-कर्मसे निवृत्त हो।"

कुमार वर्द्धमान महावीर दैनिक कर्मोसे निवृत्त हो सर्वप्रथम देवालय गये। आदितीर्थंकर ऋषभदेवकी कायोत्सर्ग प्रतिमाके दर्शन कर उन्हें असीम सुख मिला। कुमारने एक बार सम्पूर्ण

प्रतिमाकी छविको निहारा और फिर उन्होंने नेत्र बन्द कर लिये। आदितीर्थंकरकी वीतराग प्रतिमाकी वीतरागताको वर्द्धमान आत्मसात् कर लेना चाहते थे, हृदयके अन्तरालमें उतार लेना चाहते थे।

दासी रश्मि नृप सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणी त्रिशलाके कक्ष तक गई और द्वारपर खड़े प्रतिहारीसे कहा, रानी माँके चरणोंमें मेरा विनम्र प्रणाम कहना और कहना वज्जिसंघके सम्राट् एवं राजकुमार वर्द्धमानकी विशेष परिचारिका रश्मि आपके समक्ष अविलम्ब उपस्थित होकर विशेष सन्देश प्रस्तुत करनेकी अनुमति चाहती है। प्रतिहारीने राजमहलके सर्वोत्कृष्ट कलासज्जित भवनके द्वारपर हल्की-सी ध्वनि करनेके पश्चात् कक्षमें प्रवेश किया।

रानी माँने राजसी स्वरमे पूछा, "किसका सन्देश है ?"

दासी रश्मि किंचित् सम्भ्रमित हुई बोली, "रानी माँ सन्देश तो किसीने नही भेजा।"

रानी माँ, "फिर क्या कहना चाहती है ?"

रश्मिने साहस संचित कर, कहना प्रारम्भ किया, "रानी माँ मुझे ज्ञात है कि राजमहलके एक कक्षकी बात दूसरे कक्ष तक पहुँचाना अक्षम्य अपराध है, किन्तु मैने बाल्यकालसे आजतक इस युवा देहको ज्ञातृवंशके अन्नसे पुष्ट किया है। मै ही क्या, मेरी अनेकों पीढियाँ ज्ञातृवंश और उसके उद्गम इक्ष्वाकु वंशकी ऋणी है इसलिए आज अपनी स्वेच्छासे कुछ सन्देश प्रस्तुत करनेका साहस कर रही हूँ।

"सूर्योदयके पूर्व मैंने ज्ञातृवंशके समर्थ सूर्य वर्द्धमान महावीरके शयन-कक्षमें प्रवेश किया। सध्यामें सज्जित शय्या प्रात.काल उपेक्षित पड़ी रही—राजकुमार रात्रिमें सोये नही थे। कम्बल तथा बहुमूल्य शालोंकी तहतक नही खोली गई थी। कीमती उत्तरीय कक्षमें एक ओर पड़ा था। सूर्यकी किरणे जब वर्द्धमान-की देहपर पड़ी तो वर्द्धमान बोले, "सूर्यकी सुहागिन बेटियो, भविष्यमें वर्द्धमान तुम्हे इस कक्षमे नही मिलेगा। वह समयपर शिलालेख लिखने जा रहा है। वह ज्ञान-रश्मियोंकी खोजमें, केवलज्ञानकी खोजमें जा रहा है, वह अब बीहड़ वनोमें, पर्वतों-पर, सरिताओके तटपर मिलेगा।" रश्मिने सन्देश समाप्त किया। नृप सिद्धार्थ सन्देश सुनकर प्रथम क्षण स्तब्ध रह गये, दूसरे क्षण प्रकृतिस्थ होकर अपनी ग्रीवामे सुशोभित एकावली उतारकर दासीकी ओर उछाल दिया।

सन्देश-वचन सुनकर रानी त्रिशलाका वत्सलहृदय अधीर हो उठा। नेत्रोसे स्वतः अश्रुनिर्झरिणी फूट पड़ी—व्याकुल नेत्रोमे

विस्मयभरी दृष्टिसे वे नृप सिद्धार्थको देखने लगी। राजाने उनकी आँखोंमें तैरते प्रश्नको समझ लिया और कोकिल स्वरमें कहा, "देवि! दासीको पुरस्कृत करना राजकीय परम्पराओंके निर्वाहका प्रतीक है। उसके सन्देश समझने और समयपर सन्देश-वाहिकाके दायित्वोंको पूर्ण करनेके मूल्यांकनका प्रतीक है। देवी, सन्देश तुम्हें कैसा लगा, यह पृथक् बात है।"

रही थी। अति बहुमूल्य दुकूल वक्षसे लिपटा था। रत्न-जड़ित स्वर्णकंठहारोंकी ज्योतिसे दुकूलकी आभा द्विगुणित हो उठी थी। रात्रि-जागरणका उनकी पलकोंपर कोई प्रभाव दृष्टि-गोचर नही हो रहा था। उनके नेत्रोमे विशेष प्रकारकी चमक थी। रश्मिने कक्षमें प्रवेश किया और कहा, "ज्ञातृवंशके समर्थ सूर्य—रानी माँ अल्पकालमे ही इस कक्षमे प्रवेश पाने आ रही है। सन्देशवाहक द्वारपर प्रतीक्षामे खड़ा है।"

वैशालीके राजकुमारने रश्मिकी ओर दृष्टि उठाई, उसके गलेमें नृप सिद्धार्थका बहुमूल्य हार देखकर उनकी मुस्कान और भी मोहक हो उठी। वर्द्धमानने मन-ही-मन कहा, "चतुर दासीने मेरा भार कुछ हल्का कर दिया।"

●

रानी प्रियकारिणी त्रिशलाको प्रतीक्षा करनेका सम्बल शेष नहीं था। पनिहारीके जाते ही वे वर्द्धमानके कक्षकी ओर चल चुकी थीं।

वर्द्धमान महावीरके कक्षमें रानी माँ प्रियकारिणी त्रिशलाने प्रवेश किया। वर्द्धमान बहुत ही श्रद्धा-आदरपूर्वक झुके और वे ममतामयी माँके चरणोंकी धूलि माथेसे लगाकर बोले, "माँ आपने इतना कष्ट क्यों उठाया? मैं स्वयं ही आपके और पिताश्रीके चरणोंकी धूलि आशीर्वादस्वरूप प्राप्त करने उपस्थित होनेवाला था।" माँ प्रियकारिणी त्रिशलाने वात्सल्यभरा हाथ बैठालके राजकुमार वर्द्धमानके घुंघराले श्यामल केशोंपर फेरा। माँकी ममताके आँगने दरारें पड़ गईं, आँसुओंकी नन्हीं-नन्हीं बूँदें कुमारके कपोलोंपर आ गिरीं।

मैंने संकल्प लिया है माँ, कोटि-कोटि चन्द्र-सूर्यसे भी प्रखर ज्ञान-सूर्यकी खोजमें जाऊँ। माँ, मंगल आशीर्वाद दो, अपने आँसुओं-को पोछकर मेरा मार्ग प्रशस्त करो। माँ, सम्बल दो, साहस दो।"

माँ प्रियकारिणीका कंठ अवरुद्ध हो गया। विह्वल स्वरमें बोली, "पुत्र! तेरे संकल्पोमें मेरे सपने टूटते हैं। ज्यों-ज्यो तेरा संकल्प दृढ होता जाता है, मुझे लगता है मेरी ममताभरी गोद खाली होती जा रही है। विश्वकी समस्त माताएँ सभी कष्ट सह सकती है, किन्तु माँका ममताभरा आँचल ममताकी रिक्तताके बोझको सहन नही कर सकता। माँके आँसुओंका कुछ मूल्य होता है पुत्र? तो पोछ दे इन आँसुओंको। शूलोंभरी डगरसे, पग-डंडियोंभरे टेढे-मेढे मार्गोंसे राज-पथपर लौट—मै निहाल हो जाऊँगी। विश्वके सभी सुख उपलब्ध हैं। वर्द्धमान, तेरे जैसे पुत्रको जन्म देकर मै कृतकृत्य हो चुकी हूँ। मेरा सुहाग, मेरा सिन्दूर सफल हो चुका है। मेरे इस ममताभरे आँचलमें वज्जिसंघके समर्थ उत्तराधिकारीका दान दे। विश्वके सारभूत तत्त्वोंसे निर्मित रूपसी यशोदा अब भी तुम्हारी प्रतीक्षामें कुंवारी बैठी है। आदि-तीर्थंकर ऋषभदेवके इक्ष्वाकु वंशको उत्तराधिकारी दे। यौवनकी संध्या मुक्तिकी खोजका वास्तविक समय है।"

वैशालीके राजकुमार वर्द्धमान महावीर माँके शब्द सुन व्याकुल हो उठे और बोले, "माँ, यह आज तुम क्या कह रही हो, भौतिक कष्टोंसे भयभीत हो राज-मार्गपर लौट आऊँ और मीलके पत्थरोंके सहारे जीवनकी यात्रा समाप्त कर दूँ? रूपसी यशोदाको अंकसे लगाऊँ और वर्षोंकी साधनाको वासनाके पंकमें डुबा दूँ? यदि इस दिशामें ही अपने पुत्रको जाते देखकर तुम्हारी आँखोंको तृप्ति मिलती है तो माँ, आगमवाणीके अमृत-जलसे अपने पुत्रकी भावनाओंको क्यों सीचा? व्यक्तिगत सुखोंको

निहित होता है जितना मुस्कानोंमें। सत्य तो यह है कि लोक-कल्याणके लिए व्यक्तिगत सुखोंको समर्पित करनेका नाम ही जीवन है। रोनेकी सीमा तो होती ही है, आज नही तो कल आँसू थम ही जायेंगे। वर्द्धमान तू युगके आँसू पोंछ, यज्ञोंसे उठती हुई पशु और नर-मांसकी दुर्गन्धको घृत और चन्दनकी सुवासमें बदल। मै आदितीर्थंकर ऋषभदेवकी शपथपूर्वक कहती हूँ कि मेरे सोलह सपने सच होनेवाले है। मै युगों-युगोंको अमर होनेवाली हूँ। मै आशीष देती हूँ तेरी साधना डिगे नही।"
इसके पूर्व कि वैशालीके राजकुमार कुछ कहते, त्रिशला वर्द्धमानके शीशपर हाथ रख तीव्रगतिसे कक्षके बाहर चली गईं।

चमचमाते फर्शपर उनके आँसुओंकी अनेक बूंदे झिलमिला रही थीं, वैशालीके राजकुमार वर्द्धमान महावीरने अपने बहुमूल्य दुकूलसे सभी अश्रु-बिन्दुओको पोंछा और भीगे हुए दुकूलके छोरसे स्वयंकी आँखोमे झिलमिलाते हुए आँसुओंको सुखा डाला।

नन्दावर्त राजमहलमें द्रुतगतिसे यह सन्देश फैल गया कि वैशालीके राजकुमार वर्द्धमान महावीर आज गृहत्याग कर रहे हैं। राज-प्रासादसे बात निकली और कुण्डलपुरकी अट्टालिकाओं-से लेकर झोंपड़ियों तक फैल गई। राज-परिवार शोकमें निमग्न था। महाराज सिद्धार्थ और महारानी त्रिशला अपने कक्षसे भी नहीं निकले। सौधर्म इन्द्रके अवधिज्ञानमें परिलक्षित हुआ कि अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान महावीरकी वैराग्य-भावना साकार रूप लेने जा रही है तो वे प्रमुदित हो उठे और अविलम्ब कुण्डलपुर पहुँचे। सौधर्मेन्द्रने कुण्डलपुरमें नृप सिद्धार्थके कक्षमें प्रवेश किया। सौधर्मेन्द्रको देखकर राजाको लगा कि उनके तिमिराच्छन्न हृदय-कक्षमें कोई आलोक-किरण आ गई है। व्याकुलतासे बोले, "इन्द्रदेव। आप ही कुछ प्रयत्न कीजिये, वर्द्धमानको रोकिये।"

पालकी सजाओ। महारानी, मंगलदीप प्रज्ज्वलित कर वर्द्धमान-की आरती उतारो, उसके दिव्य-पथमें मुस्कानें बिखेरो और आदितीर्थंकर ऋषभ प्रभुसे प्रार्थना करो कि वर्द्धमान महावीर-के साधना-पथमे आलोक भरे। राजन! ज्ञातृ-खण्डवनके पुनीत-स्थलपर जाकर अपने पुत्रको विशाल विश्वको समर्पित कर दो। कुछ दिन बाद ही वर्द्धमान महावीरकी गाथाएँ सुनकर तुम्हारा रोम-रोम पुलकित हो उठेगा।" इन्द्रका सम्बोधन सुनकर राज-दम्पतिका मोह-तिमिर दूर हो गया।

नंदावर्त दुर्गकी सीढ़ीपर प्रथम चरण रखते ही वीणा, मुरज, पुष्कर, पणव, आनक-दुन्दुभि, घंटा-सिहनाद आदि विविध वाद्य-यंत्र गूँज उठे। श्रमण-सस्कृतिके पुनीत मंत्रोके मगलाचरणके उच्चारणसे वातावरण गुजरित हो उठा। दुर्गके विशाल प्रांगण-में पदाति, हस्ति-सेना, अश्व-सेना, रथ-सेना राजकुमारके सम्मानमें सुसज्जित खड़ी थी। वर्द्धमान महावीरके प्रथम सीढ़ी-पर चरण रखते ही उपस्थित विशाल जनसमूहकी प्रतीक्षामे व्याकुल आँखे निर्निमेष हो वर्द्धमानके अद्‌भुत रूपको देखने लगीं। वैशालीके राजकुमार एक-एक सोपानपर सधे हुए चरण रखते हुए उतरते चले आ रहे थे। कुमारका रूप अद्वितीय था, देह स्वर्ण-वर्ण, केश घुँघराले, शरीरका प्रत्येक अंग आनुपातिक था, वाणी संगीतमय। कुमारको सीढियोंपरसे उतरते देखकर विशाल जनसमूहको लगा जैसे नन्दावर्तके पुण्यलोकसे कोई दिव्य-आत्मा संसृतिके कल्याणहेतु भूमिपर उतर रही हो। वर्द्धमानने ज्यो-ही उतरनेका क्रम समाप्तकर भूमिपर चरण रखे, वाद्य-यत्रोंकी गति तीव्र हो उठी। गगन वैशालीके राजकुमार वर्द्धमान महा-वीरके जयघोषसे गूँज उठा। रानी प्रियकारिणी त्रिशलाने स्वर्ण-

दीपसे आरती उतारी । आरतीके तत्काल पश्चात् ही वर्द्धमान त्रिशलाके चरणोंपर झुके, प्रियकारिणीके अधरोंपर मुस्कान उतर आई । उनका रोम-रोम सुखानुभूतिसे भर उठा । उन्होंने अपना वात्सल्यभरा हाथ वर्द्धमानके मस्तकपर रखा और उन्हें वक्षसे लगा लिया । प्रियकारिणी कुछ क्षणोंमें ही स्नेह और वात्सल्यके कोषको दीर्घकालके लिए हृदय-सागरमें संचित कर लेना चाहती थी । प्रियकारिणी त्रिशलाने कहा, "पुत्र, आदितीर्थंकर ऋषभ-देव तुम्हारा मार्ग प्रशस्त करें ।" गम्भीर मुद्रामें वैशालीके राज-कुमार चन्द्रपालकीके समीप पहुँचे । कुमार वर्द्धमान नृप सिद्धार्थके चरणोंमें विनम्र प्रणामकर चन्द्रपालकीपर आरूढ़ हो गये । जय वर्द्धमान, जय महावीर, जय त्रिशला-नन्दनके जयघोषसे आकाश गूँज उठा ।

रूपमें राजसिंहासनपर आसीन थे। धर्मप्रिय चेलनाको महारानी-पद प्राप्त था।

राजगृहके सुरम्य अचलमें बने मगधपतिके गगनचुम्बी दुर्ग मगधके वैभवकी कथा बिना कहे सुनाते थे। सम्राट् श्रेणिक बिम्ब-सार महारानी चेलनाके प्रति विशेष अनुरक्त थे। एक दूसरेके प्रति प्रणयकी स्वाभाविक अनुभूति जीवनको सुखद बनाये हुए थी। महारानी चेलना श्रमण-सस्कृतिके आदितीर्थंकर ऋषभदेवकी उपासिका थी और सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार अपने कुमारकालमें ही बौद्धधर्मके अनुयायी हो गये थे।

सम्राट् श्रेणिकको अपने पिता सम्राट् उपश्रेणिकके शासन-कालमें ही निर्वासित जीवन व्यतीत करनेके लिए बाध्य होना पड़ा था। उपश्रेणिकके शासनकालमे श्रेणिकके चातुर्य और वीरताके कारण कतिपय श्रेष्ठि और सामन्त उनसे द्वेष रखते थे। उन्होने युवककुमार श्रेणिकपर दोषारोपण किया कि "कुमार मगध-शासनके प्रति निष्ठावान् नही है, गुप्त रूपसे पाँच हजार योद्धाओका पोषण करते है और किसी भी समय मगध विद्रोहकी आगमे झुलस सकता है।" ऐसे प्रसगोंके लिए प्रमाण प्रस्तुत करनेकी आवश्यकता नही होती, मात्र शंका उत्पन्न करनेसे ही कार्यकी सिद्धि हो जाती है। सम्राट् श्रेणिक बिम्बसारको इसी कारण वर्षो निर्वासित जीवन व्यतीत करना पड़ा। दुर्दिनमे उन्हे पेटभर भोजन भी प्राप्त करना दुर्लभ हो गया था। निर्वासित कालमे नन्दिग्राममें अनेकों बार याचना करनेपर भी उन्हे भोजन प्राप्त नही हुआ, तब वे बौद्ध-मठमें गये। तथागत महात्मा बुद्धके एक दयालु शिष्यने उन्हें श्रद्धासहित आतिथ्य दिया, भोजन भी, तत्पश्चात् महात्मा बुद्धके सिद्धान्तोकी मीमासा की। निर्वासित राजकुमार श्रेणिक उसी क्षणसे बौद्ध-धर्मके अनुयायी हो गये।

किन्तु अपने बाहुबल और पराक्रमसे मगधपति होनेके पश्चात्

सम्राट् श्रेणिक महारानी चेलनाके विशेष संसर्गमें आये। महारानी चेलना श्रमण-संस्कृतिके गौरव-गीत गाती और सम्राट् तथागत महात्मा बुद्धके। दोनोंका बौद्धिक चिन्तन दो विपरीत धाराओंमें प्रवाहित हो रहा था।

सम्राट श्रेणिक कहते, "मध्यम मार्ग ही धर्म-साधनाका आधार है। वीणाके तार न अधिक कसे हुए हों और न शिथिल, तभी सुस्वरताकी निष्पत्ति होती है।"

शिकारी कुत्तोंसे कष्ट पहुंचानेका प्रयत्न किया। श्वान श्रमणश्री तक गये तो, किन्तु पूँछ हिलाते हुए लौट आये, तब सम्राट श्रेणिक बिम्बसारने कहा, यह साधु कोई मायावी प्रतीत होता है और अकारण ही सम्राट बिम्बसारका हृदय घृणासे भर उठा। सहसा उनकी दृष्टि एक लम्बे काले मृत नागपर गयी और उन्होने अपने खड्गकी म्यानसे विषधरको उठाकर दिगम्बर श्रमणके गलेमे डाल दिया।

मृगयासे लौटकर सम्राट राजकाजमे व्यस्त हो गये। तीन दिवस पश्चात रात्रिके प्रथम प्रहरमे सम्राट श्रेणिक बिम्बसार चेलनासे चर्चा करनेमे व्यस्त थे। किसी प्रसंगके मध्य सम्राटने कहा—चेलना! यदि किसी दिगम्बर श्रमणके कठमे सर्प-हार पहिना दिया जाय तो दिगम्बर क्षमण क्या करेगे ?

रानीको इस घटनाके सम्बन्धमे कोई जानकारी नही थी। सहजभावसे चेलनाने उत्तर दिया, देव ! श्रमणश्रीको क्या करना है, जो भी करना है वह विषधरको ही करना है।

सम्राट—देवी ! यदि सर्प मृत हो तब ?

रानी—तो सर्प श्रमणश्रीकी अन्तिम स्वाँस तक गलेमें ही पडा रहेगा।

सम्राटने अट्टहास किया और कहा—क्या दिगम्बर श्रमण यथावत् बैठे रहेगे ?

चेलनाने गभीर स्वरमे कहा, यह सत्य है देव ! इसमे हँसने जैसी क्या बात है ?

महाराजने फिर विनोदभरे स्वरमें कहा, "मैने तीन दिवस पूर्व एक नग्न जैन श्रमणके गलेमे सर्प डाल दिया था, पर वह मायावी तो कभीका भाग गया होगा।"

चेलनाको यह सुनकर मार्मिक पीड़ा हुई, बुझे हुए स्वरमे

चेलनाने कहा, 'देव ! दिगम्बर श्रमण उपसर्ग-निवारणके पूर्व एक सूत भी अपने स्थानसे नही डिगेगे।

सम्राटने कहा, जब दिगम्बर श्रमणमे उपसर्ग सहनेकी असीम शक्ति है तो तुम क्यो दु.खी हो चेलना ?

चेलना—'देव ! श्रमण तो लाभ-हानि, जीवन-मरण, अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियोसे अप्रभावित रहते है। पर मै दु खी इसलिये हूँ कि स्वामी आपने अज्ञानमे पाप-तिमिरसे अपने जीवनको आच्छादित कर लिया।

सम्राट—'चेलना! आज तुम्हारे विश्वासको परीक्षाकी कसौटीपर कस लूँ। हमारे जीवनमे समानताके बीच एक ऐसी रेखा भी है जो हमे एक दिशामे साथ-साथ चलनेसे रोकती है। चेलना, यदि तुम्हारे दिगम्बर श्रमण अपने स्थानपर अविचल बैठे मिले, तो मै श्रमण-सस्कृतिके चरणोमे अपने जीवनको सर्मपित कर दूँगा, अन्यथा तुम्हे प्रभु तथागतकी शरण स्वीकार करनी होगी।

चेलनाने गभीर स्वरमे कहा, 'स्वामी, आजसे आप श्रमण-संस्कृतिके उपासक हुए, इसी क्रममे श्रेणिक बिम्बसारने कहा, और देवी आजसे तथागत बुद्धकी शरणमे चली गयी।

स्वर्ण-रथमे बैठ, पर्याप्त प्रकाश और सुरक्षा दलसहित बिम्ब-सार और चेलना निर्दिष्ट स्थान तक गये। सम्राट् बिम्बसार श्रमण-श्रीको विस्मयभरी दृष्टिसे देखते ही रह गये। मृत सर्प यथावत् गलेमे पडा था और श्रमण अविचल भावसे बैठे थे। जैसे देहसे उनका कोई सम्बन्ध न हो। विषधरके घावके कारण दिगम्बर देहपर काली चीटियाँ ही चीटियाँ रेग रही थी। श्रमणश्रीका अधिकाश भाग काले टीलेके समान लग रहा था। यदि देहका कोई भाग चीटियोसे रहित था, तो वह चीटियोके काटनेसे रक्तिम हो उठा था। रानी चेलना पीडामे डूब गयी, आँसुओसे नहा गयी। सम्राट्की ओर देखकर पीड़ाभरे स्वरमे कहा, देव !

और सम्राट् बिम्बसारका मस्तिष्क अपने अविवेकी कृत्य-पर लज्जासे झुक गया।

महारानी चेलनाने श्रमणश्रीके कंठसे सर्पको पृथक् किया। एक-एक कर चीटियाँ देहसे उतर गयी। श्रमणश्रीकी समस्त देह रक्तिम हो उठी थी। उष्ण जलमे वस्त्र भिगोकर सम्राट्ने श्रमण-श्रीकी देहको स्वच्छ किया। श्रेणिक और चेलना श्रमणश्रीकी समाधि टूटनेकी प्रतीक्षा करते रहे। सूर्योदयके साथ-साथ श्रमणश्रीकी समाधि टूटी। सम्राट् श्रेणिक और महारानी चेलनाने श्रमणश्रीके चरणोमे श्रद्धा-भक्ति-समन्वित वदना अर्पित की, उनके पवित्र चरणोकी धूलि शीशपर चढायी। श्रमणश्रीने गम्भीर स्वरमें कहा, 'मगधराज-दम्पति बिम्वसार और चेलनाकी सद्धर्ममे आस्था हो, सद्ज्ञान उपलब्ध हो।' श्रेणिकने विस्मय और श्रद्धाभरी दृष्टि-से श्रमणश्रीके नेत्रोंकी ओर निहारा। सम्राट्को लगा कि श्रमण-श्रीके निश्छल नेत्रोसे वात्सल्य और वीतरागताकी किरणे झर रही हो। इसके पूर्व कि सम्राट् कुछ कहते, सुकोमल श्रमणश्री आकाश-मार्गसे गमन कर गये। बिम्बसार और चेलना श्रद्धासे हाथ जोड़े खड़े रहे जब तक कि श्रमणश्री दृष्टिसे ओझल न हो गये।

सम्राट् सोच रहे थे—जिस श्रमणके साथ मैने इतना निर्मम व्यवहार किया उन्होंने मुझे शाप देनेकी अपेक्षा सद्ज्ञान-प्राप्तिका मंगल आशीष दिया। कैसी निर्मलता थी नेत्रोमें, उनका हृदय श्रमण-संस्कृतिके प्रति अनुराग और आदरसे भर गया। उन्होंने तीर्थंकर आदिनाथ द्वारा प्रवर्तित धर्म, श्रमणसंस्कृतिके पावन सिद्धातोंमें मन-ही-मन समर्पित होनेका सकल्प किया।

एक दिन महारानी चेलनाने सम्राट्से कहा, "एक विलक्षण सुखद सूचना है देव। मेरी ज्येष्ठ भगिनी प्रियकारिणी त्रिशलाके पुत्र, समर्थ लिच्छविसघके एकमात्र उत्तराधिकारी, वैशालीके राजकुमार वर्धमान महावीरने ससारसे विरक्त हो दिगम्बर श्रमणकी दीक्षा ग्रहण कर ली है। देव, कुछ ऐसा उपाय कीजिये, जिससे राजकुमारके दैनिक जीवन-प्रसंगोकी सूचना सकलित एव प्राप्त होती रहे।'

सम्राट् श्रेणिक बिम्बसारने कहा, "विशाल मगध-साम्राज्यकी महारानी और अपनी प्रेयसीकी भावनाओकी पूर्तिमे मगधपतिको सुख मिलता है देवी, अविलम्ब आदेश प्रसारित करता हूँ। सम्राट्ने सेविकासे कहा, 'ज्ञानदेवको अविलम्ब भेजो।'

ज्ञानदेवने शीघ्र ही कक्षमे प्रवेश किया और अभिवादन कर आदेशकी प्रतीक्षामे मौन खडा रहा।

ज्ञानदेव मगधके गुप्तचर-विभागका प्रधान गुप्तचर था। सपूर्ण गुप्तचर-विभाग ज्ञानदेवके आधीन था। सम्पूर्ण मगधमे उसकी प्रसिद्धि थी। वह भारतके विभिन्न प्रातोमे बोली जानेवाली भाषाएँ अधिकारपूर्वक बोल सकता था। वह साधु, दरवेश, वणिक, जौहरी आदिका सफलतापूर्वक अभिनय करनेकी क्षमता रखता था। सस्कृत, प्राकृत और अनेको म्लेच्छ भाषाओका भी उसने ज्ञान अर्जन किया था।

सम्राट्ने कहा, ज्ञानदेव ! वैशालीके राजकुमार वर्धमान महावीरने ज्ञातृखण्ड वनमे दिगम्बर श्रमणपदकी दीक्षा ग्रहण की

है। उनके दैनिक जीवनकी घटनाओके संकलनको समय-समय पर मगध भेजनेका दायित्व तुम्हें सौपा जाता है।

ज्ञानदेव चकित हो उठा, वह समझ भी न सका, इतने सामान्य कामपर गुप्तचर-विभागके प्रधानकी नियुक्तिका क्या औचित्य है ? कुछ क्षण वह विचार करता रहा। फिर बोला—'सम्राट्, आदेशको निष्ठापूर्वक यथावत् पालन करनेके आश्वासन-के साथ मै कुछ निवेदन करनेकी अनुमति चाहता हूँ।'

सम्राट्—कहो।

ज्ञानदेव—'इतने सामान्य कार्यपर गुप्तचर-विभागके प्रधान-की नियुक्ति समय और शक्तिका दुरु.........

शब्द ज्ञानदेवके अधरोपर ही रह गये। सम्राट् श्रेणिक बिम्बसारने क्रोधित स्वरमे कहा, 'ज्ञानदेव ! स्वामिभक्त होनेपर भी अपनी सीमाका उल्लंघन मगध-न्याय-सहितामे देशद्रोहकी परिधिमे आता है।' ज्ञानदेव काँप उठा।

मगधपतिने पुनः कहा—'ज्ञानदेव, विभिन्न राज्योमें मगध और मगधपतिके प्रति क्या दृष्टिकोण है, इसे जाननेका भी अवसर मिलेगा। क्या यह महत्वपूर्ण नही है ? किन्तु ज्ञानदेव, तुम्हे मात्र श्रमण वर्धमानके प्रसंगोको सकलित करनेके अतिरिक्त कोई अन्य कार्य नही करना है। वर्धमानके जीवनकी घटनाएँ वर्तमान कालमें आनेवाली पीढियोके भी मंगल भविष्यका मार्ग प्रशस्त करेगी। उनके जीवन-प्रसगकी घटनाएँ इतिहासकी सबसे बहुमूल्य सामग्री होगी। ज्ञानदेव अभिवादन कर कक्षसे बाहर हो गया।

ज्ञातृखण्ड वनमे एक स्फटिक शिलाखंडपर युवा श्रमण वर्धमान महावीर आत्म-चिन्तनमे लीन थे। वहाँ वाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुषोकी श्रमण वर्धमानके दर्शनार्थ भीड़ लगी रहती थी। अल्प-कालमे ही ज्ञातृखण्ड वन तीर्थस्थल वन गया था। वैशालीके राज-कुमारके विषयमे विभिन्न प्रकारकी चर्चाएँ चल रही थी। कोई कहता—क्या यही वैशालीके राजकुमार वर्धमान महावीर हैं? वैभव और विलाससे आकठमग्न राजप्रासादमे विरक्तिके वीज इनमे कैसे अकुरित और पल्लवित हो गये? अविचल साधना-मे ऐसे वैठे हैं, जैसे वर्षोसे साधनाका अभ्यास कर रहे थे। और भीडमे कही सुनायी पडता कि नदावर्तसे जो सूचनाएँ आ रही है उनके आधारपर वर्धमान हिंसाके प्रवल विरोधी है। प्रभु करे, यज्ञो-से हिंसा उठ जाये। माँसकी दुर्गन्ध और धुंएसे साँस घुटने लगती है, पर धर्मके नाम पर सव सहना पडता है। मासको खाना भी पडता है। माँस-प्रसाद न खाने पर नरककी असीम यातनाओका भय वताकर डराया जाता है। जिस दृश्यको देखकर मनुष्यको तृप्तिकी अपेक्षा घृणा पैदा होती है, उसे परमात्मा कैसे स्वीकार करता होगा।

एक रूपसी युवती अपने वारह वर्षीय पुत्रके साथ श्रमण वर्धमान महावीरके दर्शनार्थ ज्ञातृखड वनमे आयी थी। पुत्रने कहा–माँ, तुमने तो कहा था, वैशालीके राजकुमारने श्रमण-पदकी दीक्षा ली है, उनके दर्शनार्थ जा रहे है।

युवती ने कहा—'हाँ, बेटा।'

पुत्र साधनारत वर्धमान महावीरकी ओर इंगितकर बोला—क्या यही श्रमण वर्धमान महावीर है? इनकी देहपर न गेरुआ उत्तरीय और न अन्तरीय। न अनुष्ठान करनेकी कहते, न यज्ञोंकी, न बकरा माँगते, न बकरी और न श्रीफल। माँ, पिछली बार हम साधुओके दर्शनार्थ गये थे, तब यज्ञोंमें पशुओंकी चीत्कार और रक्त देखकर मै तो डर गया था। उस भयानक दृश्यसे तो श्मशानमे कम डर लगता है। माँ, ये कैसे साधु है? यहाँ परम शान्ति है, वहाँ कोलाहल था।

युवतीने पूछा—तुझे कौन-से साधु अच्छे लगते हैं?

पुत्रने वर्धमान महावीरकी ओर इंगित कर कहा, वे, जो बच्चो-से नगे बैठे है।

युवतीने पुत्रके मुखपर शीघ्रतासे हाथ रखकर कहा—नंगे नही, दिगम्बर।

युवतीने कहा—पुत्र, विलम्ब हो रहा है, चलो घर चले। बालक युवतीका हाथ छुडाकर तीव्र गतिसे भागा और शिलाखंड पर बैठे वर्धमान महावीरके श्रीचरणोमे साष्टाग प्रणामकर उसी गतिसे लौट आया। मार्गमें युवती वर्धमानके गृह-त्यागकी कथा सुना रही थी और पुत्र प्रमुदित हो सुनता चला जा रहा था।

विस्तीर्ण गगनके नीचे, ज्ञातृखण्ड वनके सुरम्य वातावरणमे एक स्फटिक पाषाणशिलापर श्रमण वर्धमान महावीर हृदयकी अनन्त गहराइयोमे डूबकर सम्यक्‌दर्शन, सम्यक्‌ज्ञान और सम्यक्-चारित्र-की उपलब्धि और मुक्तिकी शोधमें साधनारत थे। युवा श्रमण वर्धमानको साधनाके प्रथम चरणमे स्व-चिन्तनके कुछ दुर्लभ क्षण प्राप्त हुए। आत्म-ज्ञानकी असीम पृष्ठोवाली पुस्तिकामेसे प्रारभिक पृष्ठोको वर्धमानने पढा। आत्म-साक्षात्कारकी प्रथम प्रकियाका प्रथम चरण समाप्त हुआ। तीन दिवस पश्चात् दृष्टि नसिकापरसे हटी, सिद्धोको नमस्कारकर श्रमणश्री शिलाखण्डपरसे उठे। बाह्य जगत्‌से टूटा हुआ सबध पुनः स्थापित हुआ। वामहस्तमे पिच्छि और दक्षिणहस्तमे कमण्डलु लिए श्रमण वर्धमान महावीर-ने कूलग्रामकी ओर विहार किया। जब प्रभु कूलग्राम पहुँचे तब पिच्छि और कमण्डलु उनके वामहस्तमे थे और दाहिने हाथकी अजलि बनी हुई दाहिने स्कन्धपर रखी थी। श्रमण आहारको निकले थे। कूलनृपने 'हे स्वामी, नमोस्तु' कहकर प्रभुको श्रद्धा-भक्ति सहित आमन्त्रित किया और खीरका आहार दिया। कूलग्राम-से श्रमण वर्धमान महावीर अस्थिग्राम पहुँचे और वहाँ उन्होने वर्षावास व्यतीत किया। अस्थिग्राममे श्रमण वर्धमान महावीरकी साधनाका चमत्कारी प्रभाव हुआ और अस्थिग्राम वर्धमानके नामसे सम्बोधित किया जाने लगा। अस्थिग्रामसे उन्होने शरद् ऋतुमे अपना मंगल विहार प्रारम्भ किया। अस्थिग्रामसे युवा श्रमण मोराक-सन्निवेश, मोराक-सन्निवेशसे वाचाला और

वाचालासे कनखलकी ओर विहार किया। उनके करुणाभरे हृदयमें लोक-कल्याणकी तरंगे उठ रही थी।

साधनाके प्रथम वर्षमें ही श्रमण वर्धमान महावीरकी परीक्षा-का क्षण उपस्थित हो गया। महावीरकालीन भारतकी यात्राएँ सुखद और सुरक्षित नही थी। निर्जन, कण्टकाकीर्ण और हिंसक जन्तुओसे आक्रान्त सघन वन था। श्रमण वर्धमान महावीर जब कनखल विहार कर रहे थे—निर्जन असुरक्षित मार्गपर श्रमण वर्धमान महावीरको बढते हुए देखकर कुछ गोपालकोने कहा, देवार्य ! मार्ग निरापद नही—मार्गमें दृष्टिविष नामक विषधर रहता है।

किन्तु श्रमण अपने संकल्पमे बँधे निर्जन पथकी ओर बढ़ते ही चले गये। मार्गमे कुछ और गोप मिले, उन्होंने भी कहा–देवार्य ! रुके, इस पथ पर न जाये। पर श्रमण रुके नही। ग्वालोने समझा, सम्भव है देवार्यने सुना नही, इसलिए वे वर्धमान महावीरके साथ हो लिये और कहने लगे—प्राणोंका किंचित् भी मोह हो तो इस पथ पर न जाये। मार्गमे दृष्टिविष नामक विषधर रहता है, जिस पर भी उसकी दृष्टि पड़ी है वह आज तक जीवित नही बचा। प्रभु व्यर्थ प्राण न गवाँये। श्रमण मौन थे, मौन ही रहे, चरण निर्जन पथ पर बढ़ते ही रहे, उनके चलनेकी गतिमें कोई अन्तर नही आया। ग्वाले निराश हो लौट गये।

देवार्य निर्जन पथ पर बढते ही गये, बढ़ते ही गये और मार्गसे हटकर एक भग्न देवालयके निकट कायोत्सर्ग मुद्रामें आत्म-ध्यानमें लीन हो गये।

सन्ध्याके समय दीर्घकाय विषधर दृष्टिविष लौटा। विषधर अपने बिलके प्रवेशद्वारपर साधनारत वर्धमान महावीरको देखकर क्रोधित हो भयंकर फूत्कार करने लगा, किन्तु देवार्य गहन चिन्तनमें लीन थे। बाह्य जगत्के दृश्योसे उनका संबध टूट चुका

था। दृष्टिविषकी विषाक्त दृष्टिका देवार्य पर जब कोई प्रभाव नही पडा तो वह विद्युत गतिसे उछला और देवार्यके बाँयें अंगुष्ठके समीप उसने अपने विषदंत गडा दिये और अपने विषका प्रभाव देखनेकेलिए खडा रहा। देवार्य मौन थे, मौन ही रहे। अविचल थे, अविचल साधनारत रहे। क्रोधित हो उसने पुन. उसी स्थान पर दोबारा वार किया। आश्चर्य, लाल-लाल रक्तकी अपेक्षा श्वेत दुग्ध-धारा वह निकली। इसी क्षण देवार्य वर्धमान महावीरकी समाधि टूटी। देवार्यने देखा–सामने विषधर क्रोधित हो पूँछ पर खडा है। देवार्यने अपना आशीष-भरा हाथ विषधरकी ओर उठाया। विष-धरको लगा प्रभु कह रहे हैं—चण्डकौशिक! शांत हो। चण्डकौशिक-ने देवार्य पर आक्रमण करनेके भरसक प्रयत्न किये, पर उसे लगा उसकी समस्त शक्ति क्षीण हो चुकी है। उसका मन उसके स्वच्छंद विचरणमे बाधा उपस्थित होनेके कारण प्रतिशोध लेनेको व्याकुल था, किन्तु उसकी भटकी हुई आत्मा प्रभुके संकेतमे निहित अर्थको आत्मसात् कर चुकी थी। वह टकटकी लगाये देवार्यको देखता रहा, फिर देवार्यके चरणोसे लिपट गया और अपने विषैले फनको प्रभुके चरणोसे रगडता रहा। जैसे वह अपनी भूलका पश्चात्ताप कर रहा हो। देवार्यकी एक दृष्टिमे चण्डकौशिकका भवितव्य सुधर गया और पथ सदाके लिए निर्विघ्न हो गया।

श्रमण वर्द्धमान महावीरके हृदयमे लोक-मगलकी निर्मल तरगें उठ रही थी। ममता, वात्सल्य, करुणा सभी अहिंसाकी मानस-संताने हैं, ससृतिका मंगल इन्ही भावनाओमे निहित है। श्रमणश्री अहिंसाके दिव्य-सन्देशको जन-जनके अधरो तक पहुँचा देना चाहते थे। कनखलसे प्रभु श्वेताम्बी पधारे। वहाँके राजा रामपखेणीने योगिराजकी वन्दना की। वहाँसे योगिराज सुरभिपुर और सुरभि-पुरसे गगा किनारे विहार करते हुए थूणाक सन्निवेशमे आकर आत्म-ध्यानमे लीन हो गये।

गंगाके निर्मल जलमे कुछ बालक जल-क्रीड़ा कर रहे थे। जल-क्रीडासे जब बालक लौटे, तब अनायास ही उनकी दृष्टि गगाकी माटीमें बने कमलो पर गयी। कमलकी सीधी कतारबद्ध पक्तिको देखकर वे प्रमुदित हो उठे और चिल्लाये—गगाकी माटीमें कमल खिले, गगाकी माटीमें कमल खिले। गगाकी माटी प्रभुके चरणचिह्न पा सजीव हो उठी। तभी एक बालकने कहा—'माँ सत्य ही कहती थी गगाका जल सबसे पवित्र है, निर्मल है, पर इसकी तो माटी भी अद्भुत है।' इसी समय पुष्य नामक एक समुद्रवेत्ता उस ओरसे कही जा रहा था। बच्चोंकी विलक्षण बाते सुनकर उसकी दृष्टि गंगाकी माटीमें बने चरणचिह्नों पर गयी, पुष्यने ध्यानपूर्वक कमलोको देखा और निष्कर्ष निकाला कि ये तो चक्रवर्तीके चरणचिह्न है। विश्वकी असीम सम्पदा, शक्ति-सम्पत्तिका स्वामी गगाके किनारे नंगे पाँव क्यों आने लगा। उसे लगा कि उसे भ्रम हो गया है। पर कमलोंकी

पंक्ति एक रेखाके रूपमे सुदूर तक चली गयी थी। वह ज्यो-ज्यो चरणचिह्नोको देखता उसका विश्वास दृढ होता गया कि ये चक्रवर्तीके अतिरिक्त किसीके चरणचिह्न नही हो सकते।

चक्रवर्तीके दर्शन करने और दान पानेकी आशामे बँधा पुष्य अपना मार्ग छोड चरणचिह्नोके सहारे बढता गया। जब वह थूणाक सन्निवेशमे पहुँचा तो उसने देखा चरणचिह्नोका क्रम समाप्त हो चुका है और एक सघन अशोक वृक्षकी छायामे अद्‌भुत रूप लिए एक युवक दिगम्बर खडा है। उसके रोम-रोमसे आभा प्रस्फुटित हो रही थी। वह युवककी अलौकिक रूप-छटाको निहारता रहा, वह भूल गया कि वह चक्रवर्ती सम्राट्‌के दर्शनार्थ आया था। पुष्य युवकके प्रभविष्णु रूप आकर्षणमे बँधा निर्निमेष देखता रहा। कुछ क्षण पश्चात् उसे स्मरण आया कि वह तो चक्रवर्तीकी खोजमे आया था। चक्रवर्तीकी असीम सम्पदाकी तुलनामे यह युवक उसे रकसे भी रक लगा। कहाँ वस्त्रविहीन देह और कहाँ चक्रवर्तीका वैभव ? दोनोमे उसे साम्य नही मिल पा रहा था। उसने श्रमण वर्द्धमान महावीरके समीपवर्ती भूमिका ध्यानपूर्वक अवलोकन किया। सम्भव है, चक्रवर्तीके चरणचिह्न आगे तक गये हो। कुछ दूर तक वह चक्रवर्तीके चरणचिह्नोकी खोजमे गया और निराश हो अशोकवृक्षकी छायामे लौट आया और युवककी दिगम्बर देहको ध्यानपूर्वक देखने लगा। ज्यो-ज्यो वह ध्यानपूर्वक देहको देखता, देहपर बने चिह्न युवकके चक्रवर्ती होनेकी घोषणा करते रहे और पुष्यका समुद्रशास्त्रपरसे विश्वास उठता जा रहा था। उसकी विस्मयभरी आँखोने बार-बार देहपर अकित चिह्नोको देखा, सभी चिह्न एकसाथ युवकके चक्रवर्ती सम्राट् होनेकी घोषणा कर रहे थे। पुष्यने स्वयसे कहा, 'पुष्य तेरा शास्त्र मिथ्या है, आजीविकाका साधन मिथ्या है, मिथ्याज्ञानके आधारपर आजीविका अर्जन करना पाप है'। अभी तक मै मिथ्या ज्ञान और पापवृत्तिसे

अपना और अपने परिवारका पेट पालता रहा, किन्तु भविष्यमें कभी किसीका भविष्य नही बताऊँगा। उसके हाथमे वशपरम्परागतसे प्राप्त हस्तलिखित सामुद्रिकशास्त्रकी पुस्तक थी। उसे गगामे विसर्जन करनेका सकल्पकर पुष्यने वह स्थान छोड़ा। समुद्रशास्त्रकी पुस्तक गगामे विर्सजित करनेकी भावनासे पुष्य चलने लगा। उसी क्षण सौधर्मेन्द्र आये और बोले, 'पुष्य, जिसे तू रक समझ रहा है वह तीर्थंकर वर्धमान महावीर है। चक्रवर्तीकी समस्त सम्पदा उनके चरणोकी धूलिके समान भी मूल्यवान नही है। न तेरा ज्ञान मिथ्या है और न सामुद्रिकशास्त्र। इनके श्रीचरणोमे चक्रवर्तियोंके शीश झुकते है और उनके हाथ तीर्थंकरकी चरण-धूलि पानेको व्याकुल रहते हैं'। पुष्यने फिर वर्धमान महावीरकी ओर निहारा। उसके हाथ स्वतः ही जुड़ गये, शीश श्रद्धासे झुक गया, वह उनके श्रीचरणोकी धूलि माथेसे लगा देवाधिदेवके गुण-गान करता हुआ लौट गया।

मगधके राजदरबारमे मगधपति श्रेणिक बिम्बसार राज-कार्यमे व्यस्त थे और सम्राज्ञी चेलना मगधपतिके कार्योको तन्मयतासे देख रही थी।

मगधपतिकी जय हो, के साथ ज्ञानदेव दरबारमें प्रविष्ट हुआ। अभिवादनके पश्चात् आदेशकी प्रतीक्षामे कुछ क्षण खड़ा रहा। ज्ञानदेवको देखकर सम्राट् श्रेणिक और सम्राज्ञी चेलनाकी आँखोंमे हर्ष और उत्सुकता सहज ही देखी जा सकती थी। सम्राट् बिम्बसारने कहा—"कुशल तो है ज्ञानदेव ?'

ज्ञानदेव—'हाँ, स्वामी।'

सम्राट्—वैशालीके राजकुमार श्रमण वर्धमान महावीरका रूप कैसा है ?

ज्ञानदेव—'अद्भुत।'

सम्राट्—और वाणी ?

ज्ञानदेव—सुना है, सगीतमय है।

सम्राट—और साधना ?

ज्ञानदेव—शब्दातीत, उसे शब्दोमे व्यक्त नही किया जा सकता। साधनाके पावन दृश्योकी अनुभूतिको हृदयकक्षमे सुरक्षित ही रखा जा सकता है स्वामी। साधनाकी बात शब्दोमे आते-आते मात्र छायारूप रह जाती है। जैसे किसी अलौकिक रूपकी छायाको देखकर उसकी सुन्दरताका बोध नही हो सकता, वैसे ही तीर्थंकर वर्धमान महावीरकी साधना वाणीसे व्यक्त और शब्दोमे लिपिबद्ध नही की जा सकती। देव! उनकी कामदेव-सी देहके साथ ज्योति चलती है। उनके मस्तकपर तेजोवलयकी छटा अनुपम है। क्या राजा, क्या रक जो भी उनके दर्शन करता है उनके अनुपम सौदर्यको निर्निमेष देखता ही रह जाता है। उनके चरणोकी धूलि सभी शीश पर ऐसे चढाते हैं जैसे किसी दिव्य प्रतिमाका अभिषेक-जल हो, और क्या कहूँ, देव! कुछ विदेशी रमणियोने उनके चरणोकी धूलि रजत, स्वर्ण और सप्तधातु निर्मित तावीजोमे बन्द करके अपने पुत्र-पुत्रियोके गलेमे पहिनाई है। उनका विश्वास है कि ऐसा करनेसे भूत-प्रेतसवधी बाधाएँ पास नही आती। देव! जब तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर राजगृह पधारेंगे, तो मगधका अणु-अणु सुरभिसे महकेगा।

थूणाक सन्निवेशसे राजगृहके निकट श्रमण एक तन्तुशाला-मे रुके। इस ततुशालामे लोक-सम्मानित दार्शनिक मखलि गोशालक भी रुके हुए थे। मखलि गोशालक भी दिगम्बर वेशमे विचरण करते थे। श्रमण महावीरकी साधनासे प्रभावित हो गोशालकने उन्हे अपना गुरु स्वीकार किया, किन्तु अपने जीवनके अतिम दिनोमे गोशालक पथभ्रष्ट हो गये थे। तन्तुशालासे श्रमण वर्धमान महावीरने चम्पापुर, चपापुरसे चौराक सन्निवेश, तत्पश्चात् पृष्ठचम्पा, कीयगम सन्निवेश होते हुए लाढ प्रान्तमे प्रवेश किया।

योगिराज वर्धमान महावीर महान यात्री थे, पर यात्रा उनका उद्देश्य नही था। इस विशाल विश्वको दृश्य जगत्की किसी वस्तुको प्राप्त करनेका उनका लक्ष्य नही था, ससृतिमे उनका कही गतव्य नही था। वे तो जन्म-मृत्युकी अनादिकालीन भव-भवकी यात्राको समाप्त करने हेतु यात्रा कर रहे थे। वे बाह्य-जगत्में वर्तमानमें यात्रा कर रहे थे और भीतर-ही-भीतर यात्राका निषेध। वासनाको रोको, पच-इन्द्रियोको रोको, मनकी चचल वृतियोंको रोको, भीतर-ही-भीतर अन्तरात्मा द्वारा आत्माको निर्देश दे रहे थे, भीतर जिस तीव्र गतिसे यात्राका विरोध कर रहे थे, बाहर उतनी ही गतिसे यात्रा कर रहे थे, पर भीतरकी सब यात्राएँ समाप्त होने जा रही थी। मन विषय, वासना, राग-द्वष, इन्द्रियोके सुखो-के माध्यमसे यात्राएँ करता है। वर्द्धमान महावीर इच्छाओका विरोध कर भीतरकी सभी यात्राएँ समाप्त कर रहे थे।

आत्मोपलब्धिका स्वाभाविक परिणाम है—लोक-कल्याण, वे लोक-कल्याणके लिए यात्रा कर रहे थे। युवा उनकी दिव्य-वाणी सुननेके लिए आतुर होता जा रहा था। श्रमण वर्द्धमान महावीर आदितीर्थंकर ऋृषभदेवके मगलमय पथके अनुगामी थे। लोग बिना कहे ही उस पथके अनुगामी बनते जा रहे थे और युवक योगिराज वर्द्धमान महावीर मौन थे। साधनाके वर्षमें श्रमण वर्द्धमान महावीरने लाढ़ प्रान्तमे प्रवेश किया। लाढ प्रान्त दो भागोमे विभक्त था। व्रजभूमि और शुभ्रभूमि। लाढ प्रातमें गाँव दूर-दूरपर स्थित थे। प्रातका अधिकाश भाग जनविहीन था। लाढ प्रातके अधिकाश भागोमे सस्कृति और सभ्यताने प्रवेश तक नही किया था। घनी बस्तियोमे जहाँ व्यापारिक केन्द्र थे, उन्हे छोड़कर शेष भागमे लोग वल्कल और जानवरोंकी खालसे शरीर ढँकते थे। कुछ भागोमे प्रातके वासी कौड़ियों, अस्थियोकी माला बनाकर गलेमे पहनते थे। धनुष-वाण और भालोसे मृगयाकर

जीवन-निर्वाह् करते थे। ऐसे प्रातमे योगिराजका विहार इस युग-
मे आश्चर्यका विषय था।

श्रमण वर्द्धमान महावीरने लाढ प्रातमे अधिकाश समय खुले
आकाशके नीचे, खडहरोमे, वृक्षोके नीचे बिताये। महीनो तक
निर्जल रहे। प्रातवासियोने योगिराज पर धूल फेंकी, पत्थर मारे
पालतू कुत्तोसे कटाया, पर प्रभुकी वीतराग-दृष्टि अपरिवर्तित
रही। अनेको माह तक वर्धमान लाढ प्रातमे रहे, प्रात उन्हे पा
सुवासित हो उठा।

महाप्रतापी चेटककी दुहिताको प्रकृतिने रूप, यौवन, सम्पन्नता सभी कुछ प्रदान किया था। अप्रतिम रूप और यौवन पाकर भी उसके हृदयने वासनाद्वारसे ससारमे प्रवेश करनेका निषेध कर दिया था। उसकी युवा-आकाक्षाएँ प्रणय-पथ पर चलनेके लिए अनु-प्राणित कर रही थी, उसके ज्ञान और पूर्व-संचित सस्कार उसे उस कोलाहलभरे पथ पर चलनेसे वर्जित कर रहे थे। प्रकृति भीतर-ही-भीतर वासनाके प्रति आकर्षणके बीज अकुरित कर रही थी और ज्ञान प्रतिक्षण उसकी जडे काट रहा था। भावनाएँ चन्दनबालाको वासनाके वन्दीगृहमे ले जानेके लिए प्रयत्नशील थी और चन्दना हठी हिरणीकी भाँति बन्धनोको अस्वीकार करती चली जा रही थी। उसे स्व-आत्मामे बसी कस्तूरीकी गध मिल चुकी थो। भीतर-ही-भीतर उसे असीम गहराइयाँ दिख रही थी, वह अन्तरालकी उन्ही गहराईयोमे डूबकर दुर्लभ मुक्तामणि पाने को आतुर थी।

पवनके संग जैसे सुरभि व्याप्त हो जाती है वैसे ही युगके अधरो पर युवा श्रमण वैशालीके राजकुमार वर्धमान महावीरकी कीर्ति व्याप्त थी। युवा श्रमणकी साधनाकी अद्भुत गाथाएँ सुन-कर चन्दनाके हाथ वर्धमानके पथ पर श्रद्धा-सुमन अर्पित करने और चरण उनके वीतरागी पथ पर बढनेको आतुर थे। वह जिस दिशामे बढनेका अभ्यास कर रही थी, कर्म उसे उसके प्रतिकूल दिशामे भटका रहे थे।

एक दिन सूर्योदयके साथ राजकुमारी चन्दनबाला अपनी युवा

सहेलियोके साथ वन-विहारको गयी। एक राज-उद्यानमे जब सहेलियो सहित क्रीडा कर रही थी, विद्याधरोका एक राजा आकाशमार्गसे जा रहा था। उसकी वासनाभरी दृष्टिने अनेक सहेलियोके बीचसे चन्दनबालाका अपहरण कर लिया।

विद्याधरोके राजा अकीर्तिने चन्दनबालाको एक सघन वनमे उतारा और कहा, मै तुम्हारे पृथक् निवास और सुख-सुविधाओकी व्यवस्थाकर शीघ्र लौटता हूँ, प्रतीक्षा करना। जाते समय वह चन्दनाके कठसे हार भी लेता गया, मार्गमे उसने बहुमूल्य हारोको ध्यानपूर्वक देखा—छोटे-छोटे कलात्मक अक्षरोमे वज्जिसघके महा-प्रतापी महाराज चेटकका नाम एव वज्जिसघकी मुद्रा अंकित थी। वह अपनी भूलका प्रायश्चित्त करने लौटा, किन्तु रूपसी चन्दना निर्दिष्ट स्थान छोड चुकी थी।

चन्दनबाला विमानके आकाशमे उडते ही तीव्रगतिसे चल चुकी थी। सघन वन, हिंसक पशु, नीरव रात्रि और निर्जन पथका उसे ज्ञान तक न था। प्रत्येक स्थितिमे वह अपने चरित्रकी रक्षा करना चाहती थी। इसी निमित्तसे उसका ध्यान मार्गकी कठिना-इयोकी ओर नही था। वह चलती रही, चलती रही और भोर होते-होते उसने कौशाम्बीमे प्रवेश किया। चन्दनवालाने कौशाम्वी-के विशाल नगर-द्वारसे नगरमें प्रवेश किया, किन्तु द्वारके भीतर दुर्भाग्य उसकी आतुरतासे प्रतीक्षा कर रहा था। नगर-द्वारसे वाहर स्त्री-पुरुष प्रात यमुना-स्नान करने जा रहे थे। एक श्वेत साटिका पहने एक प्रौढ महिला, हाथमें रुद्राक्षकी माला लिए कुछ वुदवदा रही थी। चन्दनबालाको उस सुरूप प्रौढ महिलाने ध्यान-पूर्वक देखा—फिर कहा, 'वहिन, कहाँसे आ रही हो ? कौशाम्वीमें तुम्हारा कौन है ? थकानसे तुम्हारा वुरा हाल है, क्या नाम है ? कहाँ जाना है ?

चन्दनबाला एकसाथ इतने सारे प्रश्नोंको सुनकर हतप्रभ रह गयी।

चन्दनबालाने कहा—माँ, मै विपत्तिमे हूँ। नाम, ग्राम जानकर क्या करोगी ? किसी जिनदेवालयका मार्ग बतादो, अपने साधर्मी भाई-बहिनोंके साथ बैठकर अपने भविष्यके सँन्दर्भमे विचार करूँगी। महिलाने कहा, 'मेरे होते हुए कष्ट उठानेकी क्या आवश्यकता है ? मै अपने हाथोंसे तेरे भविष्यको ऐसा संवारूँगी कि जीवन-पर्यन्त मेरी मंगलकामना करेगी।'

चन्दनबाला—माँ, आप तो स्नान करने जा रही है।

महिला—यमुना मैयामे स्नान करनेसे वह पुण्य कहाँ मिलेगा, जो दीन-दुखियोंकी सेवा करनेसे मिलता है। चन्दनबालाने कहा, पर माँ आपका परिचय ?

महिलाने हसकर कहा—तू भी बडी पगली है, माँका भी कोई परिचय होता है। और महिलाने अपने हाथकी मालाके मनकोके सरकानेकी गति तीव्र करते हुए कहा, चल मेरे साथ, चल सब ज्ञात हो जायेगा और अबोध चन्दनबाला उस प्रौढ़ महिलाके साथ चल दी।

चन्दनबालाने उस महिलाके साथ एक दो-मजिलें भवनमें प्रवेश किया। कुछ क्षण भवनके भीतरी भागमें चलनेके बाद महिला और चन्दवालाने एक कक्षमें प्रवेश किया। कक्षमें एक लम्बी श्वेत चादर बिछी थी, चारो ओर स्वच्छ उपधान लगे हुए थे। एक भागमे कीमती कालीन बिछा हुआ था। कक्षमें विविध प्रकारके वाद्ययंत्र और नूपुर रखे हुए थे। कक्षके एक भागमें दो-तीन युवतियाँ सगीतका अभ्यास कर रही थी। चन्दनबाला कक्षके वातावरणको देखकर चौक उठी।

महिलाने कहा, 'मैने कहा था ना, कि मै अपने हाथसे तेरे भविष्यका शृङ्गार करूँगी।' जा स्नान करके पौष्टिक भोजन

और विश्राम कर। तेरा रूप तो मै देख चुकी हूँ, तेरे स्वरकी भी परीक्षा कर लूँ। यहाँ बडे-बडे श्रेष्ठि और सामन्त आते हैं। सन्ध्यासे प्रात तक इस कक्षमे स्वर्ग उतर आता है और सम्पत्ति बरसती है।

चन्दनबालाने कहा, जितना पवित्र वेश, उतना ही अपवित्र कार्य। यह कहकर वह प्रवेशद्वारकी ओर भागी। पीछे महिलाके अट्टहास सुनायी पड रहे थे, द्वार बाहरसे उसके प्रवेश करते ही बन्द हो चुका था।

महिलाने सेवकोको पुकारा, दो बलिष्ठ सेवक आये और गणिकाने कहा, इसे ऊपरी मजिलमे ले जाओ ताकि यह निर्दिष्ट कार्य न करनेका परिणाम जान ले।

निर्दिष्ट कक्षमे पच्चीस युवतियाँ शृखलाबद्ध थी और अपने दुर्भाग्यके आँसू बहा रही थी। चन्दनबाला यह दृश्य देखकर काँप उठी। उसे भी उन युवतियोके समान बन्दी बनना पडा।

प्रात. प्रथम प्रहर बीतते ही एक बलिष्ठ, विकराल आकृतिके व्यक्तिने कक्षमे प्रवेश किया और कहा, चलो, तुम बकरियोसे एक कौडीका लाभ नही और व्यय भरपूर। चलो, रूपकी हाटमे चलो।

कौशाम्बीके राजमार्गके समीप एक प्रांगणमे रूपकी हाट लगती थी। एक काष्ठ-मचपर सभी युवतियाँ खडी थी, वस्तुओकी भाँति घोष-विक्रय द्वारा युवतियोको विक्रय किया जा रहा था। चन्दनबालाकी बोली ५०० दीनारसे प्रारम्भ हुई और १५०० दीनार पर रुकी हुई थी। रूपाजीवा मुँहमे ताम्बूलभरे जोर-जोरसे कह रही थी—यह रूप, यह यौवन, ये लहराती सर्पिणी-सी अलकें, केवल १५०० दीनार।

सहसा श्रेष्ठि वृषभदत्तका रथ उस मार्गसे निकला, गणिकाकी आवाज सुनकर उनकी दृष्टि चन्दनबाला पर गयी। कीमती वस्त्र देखकर उनकी व्यवसायिका चेतना जागृत हुई और निरपेक्ष सौन्दर्य

देखकर करुणा। उन्होंने कहा—यह युवती रूपकी हाटमे क्रय-विक्रय योग्य नही है, दुर्भाग्य इसे कहाँ ले आया। सारथीसे उन्होने रथ रोकने हेतु कहा। सारथीके आश्चर्यकी सीमा न रही, उसने रथ रोक दिया। श्रेष्ठि वृषभदत्तने रूपकी हाटमे प्रवेश किया। विशेष लोग, कीमती रथ, विशेष जातिके अश्व और श्रेष्ठि-के वहुमूल्य परिधान। लोग आश्चर्यसे देख रहे थे, रूपकी हाटमें श्रेष्ठिके प्रवेश करते ही हाटमे खलबली मच गयी। श्रेष्ठि हाटमे जाकर एक ओर खड़े हो गये। श्रेष्ठि चन्दनबालाको देखते रहे, निश्छल नेत्र, झुकी हुई ग्रीवा, सर्वांगसुन्दर देह और नेत्रोसे टप-कते हुए दुर्भाग्यके आँसू। श्रेष्ठिका संतानविहीन हृदय ममतासे पसीज उठा, उन्हे विश्वास हो गया कि यह युवती कुलीन और सच्चरित्र है।

श्रेष्ठिने गणिकासे पूछा—यह किस देशकी युवती है।

गणिकाने पीक थूकते हुए कहा, 'श्रीमान्, सुवासित कली किसी भी देशकी जलवायुमे जन्म ले सकती है। इसे किसी विशेष जलवायुकी आवश्यकता नही होती। यह रूपकी हाट है, यहाँ माल, नाम, आयु, ग्राम वताकर नही वेचा जाता। यहाँ तो आँखका खेल है जिसे हीरा समझो ले जाओ। हृदयको लुभाये तो अंकसे लगाओ, न लुभाये तो दासी वनाओ और विल्कुल ही अयोग्य हो तो घटे मूल्य पर पुनः रूपकी हाटमें वेच जाओ।

श्रेष्ठिने गणिकासे कहा—रूपाजीवा, इस युवतीका अधिकतम मूल्य क्या लोगी ?

गणिकाने कहा—श्रीमान्! सुन्दरी वोलीपर चढ चुकी है, अव मोल-भाव नही हो सकता। तुमसे एकांतमे सौदाकर अपना व्यवसाय चौपट नही करूँगी। जो वोलना है वोलिये। श्रेष्ठिने कहा, तो जा वोल ५००० दीनार।

गणिका श्रेष्ठिका चेहरा देखने लगी। ५००० दीनार! और बोली मै जानती हूँ, इस हाटमे पाँच हजार दीनार देनेवाला कोई नही है। पाँच हजार दीनारकी बोली सुनकर हाटमे सन्नाटा छा गया। कुछ क्षण बाद गणिका चन्दनबालाको श्रेष्ठिको सौप गई और व्यग्य भरे स्वरमे बोली—वृद्ध अवस्थामे भी बडा महँगा सौदा कर लेते है, इतने मूल्यमे तो कमसे कम पाँच युवतियाँ मिल जाती।

श्रेष्ठिने कहा—भाग जा अन्धी। काँचकी दुकानदारी करती है, देख, युवतीके वस्त्रोको देख, ओढन ही एक लाखकी होगी। गणिकाने ध्यानपूर्वक देखा और अपने सेवकोको आवाज दी, यह युवती नही बिकेगी।

श्रेष्ठि वृषभदत्तने कहा—रूपाजीवा, दुर्भाग्य क्यो बुलाती है, क्या कभी कौशाम्बीमे तूने श्रेष्ठि बृषभदत्तका नाम सुना है। गणिकाके पैरोके नीचेसे जमीन सरकती प्रतीत हुई, श्रेष्ठि वृषभदत्त और रूपकी हाटमे, वह स्तब्ध रह गयी, उसके कानोको विश्वास नही हो रहा था। श्रेष्ठि वृषभदत्त असीम सम्पदाके स्वामी थे। प्रात· से सन्ध्या तक उनको पैढीपर दान होता रहता था। उनके घरसे कोई याचक वापिस नही जाता था। महाराज शतानीक भी उनका सम्मान करते थे। गणिका सोच नही पा रही थी कि क्या करे। पदमे वह गणिका थी, सम्पत्तिमे उसके प्राण बसते थे। वह बोली, श्रीमान् आपकी ख्यातिका मुझे ज्ञान है, पर अभी आप रूपकी हाटमे है, मै सौदा निरस्त करती हूँ।

श्रेष्ठिने क्रोधभरे स्वरमे कहा, मूल्य भी रख और युवती भी। यदि तू युवती पर स्वामित्व प्रमाणित न कर सकी तो सध्याके पूर्व तेरी सम्पूर्ण सम्पत्ति राज्यसात् कर ली जावेगी और तू काल कोठरीमे होगी। श्रेष्ठि चलने लगे, गणिका पैरोमे पड गयी। श्रेष्ठि पैर छुडा द्रुतगतिसे रथमे जा बैठे। गणिका स्वय ही चदनबालाको रथमे बैठा आई। चन्दनबाला रो रही थी। श्रेष्ठिने कहा

पुत्री ! आँसू पोछ ले। तेरे दुर्दिनकी कथा समाप्त हो चुकी है। चदनबाला सोच रही थी—यह संसार कैसा अद्भुत है, 'एक नारीने माँ बनकर छला और पुरुष पिता बनकर छलने जा रहा है।' पर वह विवश थी। श्रेष्ठिने कहा—पुत्री, क्या सोच रही है ? वृषभदत्तपर कही अविश्वास तो नही कर रही है। तेरे कारण एक पुनीत कार्यमें विलम्ब हुआ। ज्योतिर्मय श्रमण वर्धमान महावीर लाढ प्रांतसे लौटे है, उन्हीके दर्शन करने जा रहा था। तीर्थंकर वर्धमान महावीरका नाम सुनते ही उसने अपने ऑसू पोछ डाले, उसके अधरों पर मन्द-मन्द मुस्कान उतर आयी, और श्रद्धाभरे स्वरमे बोली—पिताश्री, दिव्य पुरुष श्रमण वर्धमान महावीरके दर्शन मुझे भी कराइयेगा।

श्रेष्ठिने कहा—बेटी ! समय पर सब हो जायेगा, कौन जाने कौशाम्बीके भाग्यसे प्रभु कौशाम्बी पधारें। सहसा रथ एक विशाल अट्टालिकाके आगे रुका। अट्टालिका राजभवन-सी लगती थी। श्रेष्ठिके रथसे उतरते ही सेवक-सेविकाएँ पंक्तिबद्ध खड़े हो गये। श्रेष्ठि सहित चन्दनबालाने एक सुसज्जित कक्षमे प्रवेश किया। शयन-सिहासनपर एक महिला अर्ध लेटी थी, श्रेष्ठिको देखते ही बैठ गयी।

चदनबालाको देखकर उस महिलाने कहा—स्वामी, इस भवनमे दास-दासियोकी क्या कमी थी, जो एक और ले आये।

श्रेष्ठि बृषभदत्त—देवी ! दास-दासियोकी कमी नही थी, इसलिये दासी नही, पुत्री लाया हूँ। सेविकाकी ओर संकेतकर बोले-जाओ पुत्रीके स्नानकी व्यवस्था करो, स्वच्छ वस्त्र दो।

चंदना स्नानकर लौटी। उसका रूप और लावण्य देखकर श्रेष्ठिपत्नी सोचने लगी, 'कही स्वामी इसके सौदर्यसे प्रभावित होकर तो इसे नही लाये, पर उसकी अन्तरात्माने उसकी दुर्भावनाओंका निवारण कर दिया। उसके हृदयने कहा, "विशाल सपत्ति

उत्तराधिकारी विहीन कौन छोडता है, जब-जब स्वामीसे सन्तान हेतु विवाह करनेका आग्रह किया, उन्होने स्वीकार नही किया। युवा अवस्थामे कहते, इतनी जल्दी क्या है और अब कहते हैं कि वृद्धावस्थामे विवाह अनुचित है। ऐसे स्वामी पर शका करना व्यर्थ है।'

चन्दनबालाका समय सुखसे बीत रहा था। वह सोच रही थी कि अब मुझे वज्जिसघ लौट जाना चाहिए। वह सुयोग्य अवसरकी प्रतीक्षामे थी कि अपने हृदयकी बात पिताश्रीसे कह सके, किन्तु दुर्भाग्य अभी आँचल छोड़नेको तैयार न था। एक और दु.खद घटना हो गयी।

एक दिन श्रेष्ठि वृषभदत्त देवालयसे लौटे, चन्दनबाला मधुर स्वरमे गा रही थी—

आओ महावीर प्रभु आओ
समता, क्षमता, शांति सलोनी
कण-कणमे बिखराओ।

श्रेष्ठि प्रमुदित हो गीत सुनते रहे। गीतकी समाप्ति पर उन्होने चन्दनबालाकी प्रशसा की फिर कहा—चदना चरण धुलवानेके लिए दासीको बुला।

चदनाने कहा—पिताश्री मै चरण धुलाये देती हूँ। श्रेष्ठि एक काष्ठ-आसनपर बैठ गये और चन्दनवाला शीतल जलसे चरण धुलाने लगी। चन्दनबालाके सद्य स्नात केश श्रेष्ठिके चरणोपर जा गिरे। श्रेष्ठि वृषभदत्तने सहजभावसे केशोको उठाया और चदना-के पृष्ठ भाग पर फेक दिये।

एक दासीने इस घटनाको देखा। और मलिन बुद्धिके अनुसार इस घटनाका अर्थ लगाकर उसे श्रेष्ठि-पत्नीके कानो तक पहुँचा दिया। श्रेष्ठि-पत्नीके हृदयमे सोयी पुरानी शंका जाग उठी, उसने

चन्दनबालाके श्यामल केशोंको प्रतिशोध स्वरूप कटवाया और अट्टालिका के तलगृहमे बन्दी बना दिया।

तीन दिवस पश्चात् श्रेष्ठि लौटे, चदनबालाको अनुपस्थित देख कर बोले—चन्दनबाला कहाँ है? श्रेष्ठिपत्नीने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा—मुझे क्या पता? श्रेष्ठिने चन्दनबालाको खोजनेके अनेक प्रयत्न किये, विफल होकर एकातमे एक-एक करके सभी दास-दासियोसे पूछा। पर सबने असमर्थता प्रकट की। अन्तमें सुलेखा नामक दासी आयी, वह नयी-नयी श्रेष्ठिकी सेवामे आयी थी, किन्तु श्रेष्ठि उस पर बहुत विश्वास करते थे। श्रेष्ठिने कहा—सुलेखा, चदनबाला कहाँ है? इस सम्बन्धमे सभी अपनी असमर्थता प्रकट कर चुके है, क्या तू कुछ बता सकती है?

सुलेखाने कहा—मुझे इस संबधमे इतना ही ज्ञात हुआ है स्वामी, चन्दनबालाके केश कटवाकर उसे अट्टालिकाके तलगृहमे बन्दी कर दिया है। श्रेष्ठिके मस्तिष्कमे समस्त घटनाएँ चल-चित्रकी भाँति उभर आयी। उन्होने तलघरमें प्रवेश किया। हथकड़ी-बेड़ियाँ पहिने एक दीवारका सहारा लिए चन्दनबाला खडी थी। पास ही एक सूपमे कोदो एवं मिट्टीके पात्रमे जल रखा था। दुःखी हृदयसे श्रेष्ठि राजमार्गकी ओर खुलनेवाला द्वार खोलकर लुहार वुलाने चले गये।

सहसा कही दूरसे कोलाहलकी ध्वनि सुनायी दी। चन्दनबालाने सुननेका बहुत प्रयत्न किया, पर समझमे कुछ नही आया। सहसा कोलाहल पास आ गया। उसे स्पष्ट सुनायी पड़ा, वर्धमान महावीरकी जय, त्रिशलानन्दनकी जय, ज्ञातृपुत्रकी जय, श्रमण-सस्कृतिकी जय, सुनकर चन्दनबालाका रोम-रोम पुलकित हो उठा। उसे विस्मृत हो गया कि उसके हाथोमे हथकडी और पाँवोमे बेड़ी पड़ी है। वह कठिनाईसे चलकर दूर तक आयी। उसने देखा—

तीर्थंकर वर्धमान महावीर सामने चले आ रहे है। उसके नयन वर्षोसे जिस दिव्य-पुरुषके दर्शनोके हेतु व्याकुल थे, जिस वीतरागीके रूप-सुधाके दर्शनहेतु लालायित थे, वह उसके सामने चले आ रहे हैं। शात, गभीर, बाएँ हाथमे पिच्छी और कमण्डलु, दाएँ हाथकी अजलि बधी दाएँ स्कन्ध पर रखी हैं। प्रभु आहारके लिए निकले थे। उसका हृदय प्रभुको आहार देनेको व्याकुल हो उठा। वीत-रागताकी साकार मूर्ति समीप आते देखकर उसकी सासोकी गति बढ गयी। प्रभुके द्वारके आनेके पूर्वसे ही चन्दनबालाने मधुर कठ से उच्चारण प्रारम्भ किया।

हे स्वामी नमोस्तु
हे स्वामी नमोस्तु
हे स्वामी नमोस्तु
आहारजल शुद्ध है।

वर्धमान प्रभुके पाँवोकी गति धीमी हुई, फिर सहसा प्रभु रुके। कोलाहल शांत हो गया, वहाँ पूर्ण निस्तब्धता व्याप्त थी। चन्दनबालाके मधुर स्वरमे सहज ही सुना जा सकता था—हे स्वामी नमोस्तु।

और चन्दनबालाका एक पाँव देहरीके भीतर तथा दूसरा पाँव बाहर था। जन-समूह आश्चर्यसे इस नारीको देख रहा था। वर्धमान प्रभुने सधे हुए चरण सोपानपर रखे और वे चन्दनबालाके आगे आ गये। चन्दनबाला इस दुर्लभ सम्मानको पाकर आत्म-विभोर हो उठी, उसे लगा समस्त कष्टोकी दीर्घ शृखला, इस दुर्लभ सम्मान पानेकी पूर्वभूमिका मात्र थी। उसके नेत्रोमे विशेष प्रकार-की चमक, अधरोपर मन्द-मन्द मुसकान उतर आई। प्रभुने चन्दनबालाके मुखपर वीतरागी दृष्टि डाली, अधरोपर मुस्कान देखकर प्रभु लौटनेके हेतु मुडे, चन्दनबाला इस अमूल्य क्षणको

सरकते हुए देखकर व्यथित हो उठी, उसके नेत्रोमें निर्मल जल-विन्दु झलक आये और उसकी पीडा घनीभूत हो उठी और उसने वेदना-मिश्रित दीर्घ नि.श्वास छोड़ी। प्रभुके लौटते चरण रुक गये। उसने साहसपूर्वक 'हे स्वामी नमोस्तुका' पाठ दोहराया। प्रभु-ने अंजलि खोल दी, स्कंधपर रखा हाथ नीचे आ गया। प्रभुने उस बन्दी-गृहमें प्रवेश किया, उस कक्षमे कोदोके अतिरिक्त रखा ही क्या था। सर्वनिधि मिल चुकी थी, निर्विध्न आहार सम्पन्न हुआ।

जृम्भिक ग्रामके समीप ऋजुकूलाका तट, पुलिन-प्रदेश हरीतिमा, सघन-वृक्षलताकुज, विविध सुवासित प्रसून तीर्थङ्करकी आतुरतासे प्रतीक्षा कर रहे थे। निरन्तर बारह वर्षों तक पद-यात्रा कर, दग्ध पाषाण-शिलाओपर देह तपा, शरद्की ठिठुरती हुई रातोमे खुले आकाशके नीचे कायोत्सर्ग-मुद्रामे अविचल आत्म-ध्यानकर, खण्डहरोमे रात्रिमे एक करवट अल्पकालके लिए विश्राम कर, मासो तक उपवास रख, इन्द्रियोकी चंचल वृत्तियोका निरोध कर श्रमण वर्धमान महावीरने इन्द्रियोको अपने आधीन कर लिया था।

कौशाम्बीसे ग्रामानुग्राम विहार करते हुए योगिराज ऋजुकूलाके तट पर सघन शान्ति-वृक्षके नीचे आत्म-ध्यानमे लीन हो गये। सम्यक-दर्शन, ज्ञान और चारित्र रूप रत्नत्रयकी गरिमासे भूषित श्रमण शुक्लध्यान द्वारा आत्माके स्वस्वरूपमे स्थित होनेमे समर्थ हुए। शुक्लध्यानके प्रभावसे मोहनीय, दर्शनावरणीय व ज्ञानवरणीय और अन्तराय कर्म पूर्णत. तिरोहित हो चुके थे और वैशाख शुक्ल दशमीको दुर्लभ क्षण आया और श्रमण वर्धमान महावीर केवल-ज्ञानसे भूषित हो गये। इस दुर्लभ क्षणमे प्रभु सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, जीवन्मुक्त, परमात्मा बन गये।

इन्द्र अविलम्ब अपने परिवार सहित आये और प्रभुके चरणोकी वन्दना की। इन्द्रने अपने सेवक, सम्पत्तिके स्वामी कुवेरसे कहकर सुन्दर समवसरणकी रचना करायी। उपस्थित जन-समूह तीर्थकरकी दिव्यध्वनि सुननेको आतुर था किन्तु प्रभु मौन थे, मौन ही रहे।

इन्द्र अपने अवधिज्ञानमे दिव्य-ध्वनि प्रसृत न होनेका कारण खोज रहे थे, उन्हे ज्ञात हुआ, 'ज्ञानरूपी रथपर आरूढ हो केवली विश्व-कल्याणहेतु प्रवचन करते है और गणधर अपने बुद्धि-पटमें झेल-कर प्रवचन-माला गूँथते है। पर गणधर कहाँ ? प्रभुके प्रथम गण-धर इन्द्रभूति गौतम होगे और वे यज्ञोंमे पशुओकी आहुति चढानेमे व्यस्त हैं।

प्रातः बीता, दोपहरी ढली, संध्या अस्ताचलमे खो गयी। अमृत आचमनकी कामनामे श्रोता प्यासे-के-प्यासे रह गये। श्रोता व्याकुल थे, समवसरणका विघटन होता गया।

तीर्थंकर ऋजुकूलाके तटसे विहार कर गये, तट सूना हो गया, गहन उदासी छा गयी।

मृग स्वयकी नाभिमे बसी कस्तूरीकी गधसे व्याकुल हो सुरभि-की खोजमे भटक रहे थे। मृगी अपने जीवन-साथीकी अज्ञात व्यथा-से व्यथित हो उनके साथ विचरण कर रही थी। वन-फूलोकी गध सर्वत्र व्याप्त थी। देवदारके वृक्ष राजगृहीके राजमार्गके दोनो ओर लहरा रहे थे, मानो इस ऐतिहासिक नगरीमे प्रवेश करनेवाले यात्रियोका झुक-झुककर अभिवादन कर रहे हो। पच-पहाडियोकी शृंखला सुदूर तक फैली हुई थी। प्रकृतिके इस हरे-भरे अचलमे राज-पथ पर एक स्वर्णरथ मन्द-मन्द गतिसे चला जा रहा था। इस स्वर्णरथके पीछे सात रक्षक रथ अस्त्र-शस्त्र सज्जित योद्धाओ-से सज्जित चले आ रहे थे। रथमे आसीन थे सम्राट् श्रेणिक, उनकी प्रिया—जीवन-सगिनी सम्राज्ञी चेलना।

पश्चिममे समर्थ सूर्य डूब रहा था। रजनी अपनी उनीदी पलके खोलकर तन्द्रा-भग करनेकी प्रक्रियामे व्यस्त थी, उसके जागरणका समय हो गया था।

सम्राट् समर्थ सूर्यको डूबते हुए देखकर जीवनकी नश्वरताका विचार कर रहे थे और सम्राज्ञी चेलना प्रकृति-प्रदत्त दृश्योमे खोई हुयी थी। सम्राट् दार्शनिक-जगत्मे विचरण कर रहे थे और महारानी बाह्य-जगत्मे।

सहसा रानीकी दृष्टि दायी ओर एक शिलाखड पर आसीन दिगम्बर मानव-मूर्तिकी ओर गयी, आश्चर्यचकित हो वह उस आकृतिको निहारती रही-निहारती रही। जब रथ शिलाखडके

समीपसे निकला तो उन्होंने सुना—'सिद्धेभ्यो नमः।' रानी शीत-सध्यामें दिगम्बर श्रमणके दर्शनकर आत्म-विभोर हो गयी। दिगम्बर श्रमण साध्यकालीन सामायिकमे प्रवेश कर रहे थे। शीत रात्रि, शयनहेतु पापाणशिला ? सम्राज्ञी चेलनाका हृदय करुणा-से भर उठा।

सम्राट् बिम्बसार श्रेणिकने कहा—देवी, देखो, अस्ताचलमें समर्थ सूर्य डूब रहा है ?

महारानी—देव, डूबने दो, डूबते हुए सूर्यको कौन रोक सकता है। स्वामी उदय और अस्त इसका क्रम है।

सम्राट्—प्रेयसी, डूबते हुए सूर्यको देखकर आज ससारकी नश्वरताका बोध क्यो हो रहा है ?

महारानी—इस विशाल विश्वमे अनेको निमित्त बिखरे पड़े हैं। वे समय-समयपर मानव-हृदयको प्रभावित करते है।

सम्राट्—तब निमित्त कर्ता है ?

महारानी—नही, देव! श्मशानमे जानेपर वैराग्य और प्रेयसी-के अंकमे जानेपर हृदयमे वासना निमित्तकी सहायतासे जन्म लेती है। निमित्त उपादानमे परिवर्तनकी प्रक्रियाके समय सहायक रूपमें अनिवार्य रूपसे रहता है अथवा निमित्तसे ही उपादानमें परिवर्तन-प्रक्रिया होती है। क्या देव, आपको स्मरण है, आदितीर्थं-कर ऋषभदेव नीलांजना रूपसीका नृत्य देख रहे थे। लास्य और नृत्य-मुद्रामे व्यस्त नीलाजनाका आयुकर्म समाप्त हो गया और उस-की देह क्षणभरको भूमिपर आ गिरी। इन्द्रने तत्काल ही कृत्रिम नीलाजना नृत्य करती हुई प्रस्तुत कर दी। उपस्थित सभी उस मुद्राको देखकर वाह-वाह कर उठे, किन्तु ऋषभदेवकी दृष्टिमे नीलाजना मर चुकी थी। ऋषभ प्रभुकी आँखोने अनेकोंको कालके मुखमे जाते देखा होगा, किन्तु वे अप्रभावित रहे, किन्तु संसारकी

नश्वरताका सन्देश क्षणभरमे नीलाजना दे गयी। वर्षोंका भोग क्षणभरमे समाप्त हो गया। यद्यपि दृश्य द्रष्टा नही, द्रष्टा दृश्य नही, परन्तु दोनो एक-दूसरेका निमित्त पाकर परिणमन करते है। यह सच है कि निमित्त कर्ता नही, पर यह भी सच है कि वह अकिंचित्कर नही है, सहायक है। राजरथने राजगृहीकी नगर-सीमामे प्रवेश किया, चर्चा और साध्यकालीन भ्रमण समाप्त हुआ। रात्रिमे सम्राट् श्रेणिक अपनी प्रिय रानी चेलनाके दुर्गमे स्थित शयन-कक्षमे सुखसे गहरी नीद सो रहे थे। शीत लहर चल रही थी। प्रतिहारियोकी ध्वनि रुक-रुककर स्पष्ट सुनायी पड़ रही थी। मगध राज्यमे प्रजा सुखसे सोये, प्रतिहारी जाग रहे है। शयनकक्षके वातायन खुले थे, मध्यरात्रिमे चेलनाकी निद्रा टूटी। महारानी चेलना उठी, वातायन तक गयी, अकारण ही वातायनसे उन्होने झॉका, सहसा उन्हे वनमे साधनारत दिगम्बर श्रमणकी स्मृति हो आयी और उन्होने मन्द स्वरमे कहा, ‘इस भयकर शीतमे उनकी क्या दशा होगी, प्रभु उनकी रक्षा करे।’ सम्राट्की नीद कुछ समय पूर्व टूटी थी, उन्होने चेलनाके शब्द सुने और उनका हृदय शकासे भर उठा। एक विषका बूँद जैसे पात्रके समस्त जलको विषाक्त बना देती है, वैसे ही एक शका समस्त जीवनको दुर्भाग्यपूर्ण बनानेको सक्षम है।

महाराज सोच रहे थे, नारी अद्भुत है, एक प्रश्नवाचक है, एक पहेली है। मगधके शक्ति-सम्पन्न शासक श्रेणिक बिम्बसारकी बाँहोमे भी नारीका तन-मन सतुष्ट नही है। आगमके अनेको ग्रंथ कंठस्थ करनेपर भी श्लोक चेलनाके कठसे नीचे नही उतरे। रानी चेलना वातायन बन्द कर आयी और सो गयी, सम्राट् रात्रिभर जागते रहे। सम्राट्के हृदयमे जिस शकाने जन्म लिया था, प्रात होते-होते वह युवा हो गयी। सूर्योदयके पूर्व ही सम्राट् अपने दुर्गमे चले गये।

सम्राट् श्रेणिक बिम्बसारने अपने युवा सेनापति अभयकुमार-को बुलाया और आदेश दिया, सावधान ! रहस्य रहस्य ही रहे। जाओ, और मगधकी रानी चेलनाके दुर्गको अग्निसे नष्ट कर दो। चेलना जीवित न बचे। सावधान, यदि चेलना जीवित बच निकली तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। सेनापति शीश झुकाकर चला गया।

सेनापति सोच रहा था, यह कैसा आदेश है ! क्या सम्राट्ने मद्यपान प्रारम्भ कर दिया है अथवा मस्तिष्क विकृत हो गया है, क्या रहस्य है ? वर्षोंका प्रगाढ प्रणय किस रहस्यकी धारासे कट रहा है। सेनापतिको आदेश नितात पहेली-सा लगा, जितना सुल-झाया उतना उलझता गया। सेनापतिने सोचा—कही-न-कही आदेशमे त्रुटि है और वे आदेशके विपरीत महारानी चेलनासे भेट करने चले गये।

महारानी चेलना अपने शयन-कक्षमे राजकवि द्वारा नवनिर्मित गीतकी पंक्ति गुन-गुना रही थी।

आदि-ऋषभके पुत्र भरतका
भारत देश महान।
ऋषभदेवसे महावीर तक
करें सुमंगल गान॥

सहसा दासीने कक्षमे प्रवेश किया और कहा, देवि ! सेनापति अभयकुमार अविलम्ब भेट करनेकी अनुमतिहेतु द्वारपर प्रतीक्षामे खडे है। चेलना आश्चर्यसे सोचने लगी, सेनापतिको शयनकक्ष तक आनेका साहस कैसे हुआ। सम्भव है, कोई आवश्यक राजकीय कार्य होगा। चेलना महारानीने कहा—प्रवेशकी अनुमति है।

सेनापतिने कक्षमे प्रवेश किया और कहा—मगधकी महारानी-की जय हो।

महारानी चेलना—सेनापति ! इस शीत-प्रभातमें आनेका प्रयोजन कहो ।

सेनापति—रानी माँ ! मगधपति आज बहुत उत्तेजित हैं ।

महारानी—और मगधपतिकी उत्तेजनाका कारण मगधकी महारानीसे ज्ञात करने आये हो ।

सेनापतिने बोझिल स्वरमे कहा—क्षमा करे रानी माँ, क्या इस दुर्गमे रात्रिमे ऐसी कोई घटना घटी है जो सम्राट्को उत्तेजित कर सकती है ?

यह सुनकर महारानी चेलनाके मस्तिष्ककी नसे क्रोधसे उभर आईं, उन्होने क्रोधभरे स्वरमे कहा—सेनापति ! राजप्रासादके नियमोसे सबसे अधिक परिचित होनेके बाद भी आप सीमाका उल्लंघन कर रहे है । सावधान ! युवा सेनापति पीडासे विह्वल हो उठे और बोले—रानी माँ ! आज सेनापति नही, आपका स्नेह-प्राप्त पुत्र अभयकुमार आया है ।

महारानी चेलनाके स्वरमे अन्तर आया और वह बोली—अभय, जो तुम ज्ञात करना चाहते हो वह पुत्रके कर्त्तव्योमें आता है ।

सेनापतिने पीडित स्वरमे कहा, माँ ! अभयकुमारके रक्तकी एक-एक बूँदमे उपकार और आशीर्वाद भरे पड़े है । रानी माँ ! सम्राट्ने इस राजप्रासादको अग्निसे नष्ट करनेके आदेश प्रसारित किये है ।

यह सुनकर सम्राज्ञी चेलनाकी गभीरता बढ गयी । उन्होने ओजस्वी स्वरमे कहा, मगधपतिकी प्रत्येक आज्ञाका पालन हो । मगधपतिके आदेशकी पूर्तिमे मगधकी महारानीको प्राणोका उत्सर्ग करनेका शुभ अवसर आया है, ऐसे सौभाग्यशाली क्षण कब और किस-किस रानीको प्राप्त होते हैं ।

आँखोमे पीडा और अश्रु छिपाये सेनापति लौट गये ।

राजगृहीके समीप एक ग्राममे सघन आम्र-वृक्षोकी छायामें गौर्वर ग्रामके ग्रामपतिके युगमें प्रसिद्ध पुत्र यज्ञपति इन्द्रभूति गौतम खडे थे और नवनिर्मित यज्ञ-कुण्डोका निरीक्षण कर रहे थे, आवश्यक निर्देश दे रहे थे। समीप ही वृक्षोंकी छायामे उनका शिष्य-समूह बैठा था। शिष्य-गण सस्कृतके श्लोकोको जोर-जोरसे उच्चारणकर कंठस्थ कर रहे थे। आचार्य गौतम अपने पाँच सौ शिष्यों सहित यज्ञ कराने हेतु आमन्त्रित थे। यज्ञके सदर्भमें आवश्यक निर्देश दे इन्द्रभूति गौतम शिष्योके समीप आये और गुरु आसनपर बिछी मृगछालापर बैठ गये। पाडित्यकी छाप उनके विशाल ललाटपर स्पष्ट झलक रही थी। विशाल ज्ञान, विशुद्ध चरित्र, किन्तु परम्परागत संस्कारोसे सद्ज्ञानसे वचित हो, युगके श्रेष्ठ विद्वान इन्द्रभूति गौतम यज्ञोमे हिंसासे अपने हाथ रंग रहे थे।

आज इन्द्रभूति गौतमका मन उदास था। वेदोकी अनेक कथाएँ उनके कानोमे स्वत: ही प्रतिध्वनित हो रही थी और कह रही थी, भारतीय दर्शनका विकास अहिसाकी छत्र-छायामे हुआ है। 'ब्रह्माने यज्ञोके लिए पशुओको बनाया, यज्ञोमें की गयी हिसा हिसा नही होती।' यह ब्राह्मणोकी परिकल्पना है। यदि यज्ञोमे पशुओकी आहुति देना धर्म न होकर अधर्म हुआ तो जीवनकी अतिम साँसो तक कितना असीम पाप इन्द्रभूति गौतम अर्जित कर चुकेगे? विद्वान इन्द्रभूति गौतमका हृदय शकाएँ उपस्थित कर रहा था और समाधान खोज रहा था। किन्तु

गौतम किसी भी निर्णयपर नही पहुँच सके। उन्होने अपने हाथोकी रेखाएँ देखी, उन्हे लगा जैसे उनकी सम्पूर्ण हथेली रक्तसे सनी हुई है। विचारोकी दीर्घ शृखलासे मनको बलात् रोककर गौतम विद्यार्थियोमे व्यस्त हो गये।

सहसा एक अपरिचित विद्यार्थीने प्रवेश किया और वह इन्द्र-भूति गौतमको प्रणामकर विद्यार्थियोमे बैठ गया। कुछ क्षण पश्चात् अपरिचित विद्यार्थीने कहा, गुरुदेव! भारतवर्षके अनेको विद्वानोके पास भटक चुका, किन्तु ज्ञान-प्राप्तिकी जिज्ञासा नही मिटी, शकाओका समाधान नही मिला। आपके ज्ञानकी सुवासके आकर्षणमे यहाँ तक चला आया हूँ, जिस विद्वानके भी पास गया. उसने यही कहा कि तुम्हारी शकाओका निवारण यज्ञपति इन्द्रभूति गौतम ही कर सकते है। एक श्लोकका अर्थ समझनेके लिए आतुर हूँ। इन्द्रभूति गौतमकी आज्ञा प्राप्तकर छद्मस्थ इन्द्रने श्लोक पढा :

त्रैकाल्यं द्रव्यषटकं नवपदसहितं जीवषट्कायलेश्या
पंचान्ये चास्तिकाया व्रत-समिति-गतिज्ञानचरित्रभेदा।
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवनमहितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः
प्रत्येति श्रद्दधाति स्पृशति च मतिमान् य स वै शुद्ध-दृष्टिः॥

श्लोक सुनकर इन्द्रभूति गौतम विस्मित रह गये। षट्-द्रव्य, नव पदार्थ, षट् लेश्या, पचास्तिकाय, पच समिति, उन्हे किसी अज्ञात वर्णमालाके अक्षरोके समान लगे। श्लोकका प्रत्येक शब्द, शब्दमे निहित अर्थ, उनके जीवनभरके संचित ज्ञानको चुनौती दे रहे थे, उन्हे लगा जैसे उनकी ज्ञान-कृपाण युद्ध-स्थलमे खडे शत्रुके समक्ष हाथसे छिटककर दूर जा गिरी हो। अपने शिष्य-समूहके समक्ष इन्द्रभूति गौतम चर्चा करनेमे सकोचका अनुभव कर रहे थे। इन्द्र-भूतिने असमजसमे एक मार्ग खोजा और कहा—तेरे गुरुसे चर्चा करूँगा। कौन है तेरा गुरु ?

छद्मस्थ इन्द्रने सविनय कहा, 'तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर'।

इन्द्रभूति गौतमने पूछा—कहाँ है तेरा गुरु ?

छद्मस्थ इन्द्रने कहा—समीप ही, राजगृहीमें, विपुलाचल पर्वतपर।

इन्द्रभूति गौतम विचार करने लगे—कैसा होगा तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर ? सम्पूर्ण भारतभूमि जिसके यशोगान कर रही है। रूप, यौवन, ज्ञान सभीकी प्रसिद्धि है, पर इस युवावस्थामें असीम ज्ञान उसके पास कहाँसे आया। राजपुत्र है, हठमे घर छोड़ दिया होगा, इस बहाने चलो उससे भी साक्षात्कार कर लूँ।

इन्द्रभूतिने बटुककी ओर देखकर कहा—समीप ही है तो चल।

× × ×

विपुलाचल पर्वतपर कुबेर द्वारा नयनाभिराम समवशरणकी रचना की गयी थी। धर्मपताकाओंसे मण्डित मान-स्तम्भ और धर्मचक्र शोभायमान थे। समवशरणमें चैत्यवृक्ष, ध्वजा, वन-वेदी, स्तूप-तोरण, रत्नमयी प्रतिमाओंसे बने हुए थे। समवशरण बारह भागोंमें विभक्त था। देव, देवागनाएँ, स्त्री-पुरुष आदि प्रत्येक वर्गके श्रोताओके बैठनेकी सुव्यवस्था थी। समवशरणके मध्यमे गंधकुटी थी, जिसपर एक स्वर्णसिहासन रखा हुआ था, उसपर मनोरम सहस्रपखुरियोवाला कमल रखा था, ऐसा प्रतीत होता था जैसे तीर्थंकर उस कमलासनपर आसीन हो। किन्तु जैसे जलसे कमल उठा हुआ ही रहता है वैसे तीर्थंकर कमलासनसे उठे हुए थे। एक अद्‌भुत दृश्य था।

मगधपति सम्राट् श्रेणिक नंगे पाँवों समवशरणमें अगवानी

कर रहे थे। वे व्यस्ततामे भूल गये कि उनकी प्रेयसी चेलना अग्निमे जल चुकी होगी।

इन्द्रभूति गौतमने समवशरणमे प्रवेश किया, अद्भुत दृश्य, पुनीत मान-स्तम्भ, तीर्थंकरके दिव्य दर्शनकर इन्द्रभूतिके प्राणोमे प्रज्ञा जाग उठी। गौतमके अन्तःस्तलमे अनन्त कालसे बुझे ज्ञान-प्रदीप टिमटिमाने लगे। उन्हे लगा भीतर ही भीतर कोई प्रज्ञाकी छेनीसे हिसा और अज्ञानकी परतोको तीव्रतासे काट रहा है। तीर्थंकरके समीप पहुँचकर इन्द्रभूतिने कुछ कहना चाहा, पर उनके अधर गा उठे—हे स्वामी नमोस्तु। जल जिस प्रकार दावानलके सतापको शात करता है, हवा जिस भाँति धूलिको उडा देती है, तीर्थंकर हे प्रभु, आप भी उसी भाँति अज्ञान और मोहको नष्ट करते हैं और इन्द्रभूति गौतम सदा-सदाके लिए तीर्थंकरके श्रीचरणोमे समर्पित हो गये।

देवाधिदेव तीर्थंकर वर्द्धमान महावीरकी दिव्य-वाणी प्रस्फुटित हुई। इन्द्रभूति गौतम गणधरके रूपमे समीप ही खडे थे। दिव्य-ध्वनि सुनकर श्रोताओको ऐसा लगा जैसे अमृत-सागरसे निर्मल-ज्ञानकी अनेको धाराएँ प्रवाहित हो उठी हो।

प्रथम दिव्य-ध्वनि समाप्त हुई, श्रोताओमे अपार हर्ष था। दिव्य-देशनाकी समाप्तिपर मगधपति श्रेणिक बिम्बसारने दर्शन-विषयक शकाएँ प्रभुके समक्ष उपस्थित की। तीर्थंकर द्वारा शकाओ-का समाधान पा सभी श्रोता तृप्तिका अनुभव कर रहे थे। किन्तु मगधपतिके हृदयमे व्यक्तिगत जीवनसे सबधित एक शका अभी शेष थी।

धार्मिक शकाओके पश्चात् मगधपतिने अपनी व्यक्तिगत शका उपस्थित कर दी। मगधपतिने कहा—'देवाधिदेव चेलनाका चरित्र' ....'

इतना सुनकर तीर्थंकर-वाणी मुखरित हुई, चेलनाका चरित्र निर्दोष है, निष्कलक है। तुम्हारी शंका कल्पनाजनित मिथ्या संकेतोसे निर्मित मनःस्थिति है। मध्यरात्रिमे चेलनाका स्वगत कथन, शीतरात्रिमे साधनारत दिगम्बर श्रमणके प्रति उनकी करुणाकी अभिव्यक्ति मात्र थी। प्रथम दिव्य-देशना नियत कालमे पूर्ण हुई। दिव्य-ध्वनिकी समाप्ति पर श्रेणिककी आँखे उत्सुकतासे सेनापति अभयकुमारको खोज रही थी। सेनापति अभयकुमार कुछ क्षण उपरात स्वयं ही सम्राट्के आगे आ खड़े हुए। सम्राट्ने सेनापतिसे धीरेसे पूछा—आज्ञाका पालन हो चुका ?

सेनापति—हाँ, देव।

सम्राट्—सेनापति मगधपतिका संकेत पा द्रुतगतिसे उनके साथ चल दिये।

सम्राट्ने कहा—अभयकुमार ! तुमने राजाज्ञाके औचित्यपर विचार नही किया।

अभयकुमार—किया था देव। पर प्राणोके भयसे, मगधपति-के प्रति पूर्ण निष्ठा और राजाज्ञामें विश्वासकर आपकी आज्ञाकी पूर्ति तत्काल कर दी। यह सुनकर सम्राट्ने दीर्घ निःश्वास छोड़ी।

मगधपति और सेनापति उस स्थल पर पहुँचे, जहाँ मगधपति के अश्व और रथ खड़े थे। सैन्धवीय अश्वोपर सवार हो मगध-पति और सेनापति, महारानी चेलनाके प्रासादकी ओर चल दिये। मगधपतिने देखा—दुर्ग जल रहा था, आगकी लपटे, लगता था, आकाशको छू रही है। सम्राट् अपने अविवेकपर पछता रहे थे और चेलनाके प्रणय-प्रसग उनकी अश्रुभरी आँखोमे चल-चित्रसे आ-आकर मिट रहे थे। दुर्गके आगे, अग्नि और धूमके अतिरिक्त कुछ दिखायी नही दे रहा था।

सम्राट्ने सेनापति अभयकी ओर देखकर निराशाभरे स्वरमे कहा, "अभय !" अब क्या होगा ?

सेनापतिने कहा, 'अब क्या हो सकता है देव। और उसने पूर्वकी दिशामे सम्राट्‌के अश्वोकी रश्मि खीचते हुए कहा, मेरे साथ आइये देव। अल्पकालके पश्चात् मगधपति और सेनापति महारानी चेलनाके दुर्गके मुख्य द्वारके आगे खड़े थे और दुर्गके तीन तरफ घास और लकड़ियोके बडे-बडे ढेर जल रहे थे।

सम्राट्‌ने आतुरतासे चेलनाके शयन-कक्षमे प्रवेश किया। महारानी चेलनाने जिस वातायनसे मध्यरात्रिमे झॉका था, वे उसी वातायनसे अब तक विपुलाचल पर्वतकी ओर देख रही थी।

सहसा पदचाप सुन चौंकी—देखा, सामने मगधपति खडे हैं। मगधकी महारानीने नेत्र झुका लिये। उसमे इतना भी साहस न था कि वह अपने प्रियकी आँखोमे झांक सके। चेलना फूट-फूटकर रो पड़ी। मगधपतिने कहा—देवि! तीर्थंकरके प्रतापसे भ्राति मिट चुकी है।

चेलनाने 'देव' कहकर अपना शीश मगधपतिके उन्नत वक्ष पर रख दिया।

मालवपति प्रद्योत एक विलक्षण शासक था। उसका चरित्र अद्भुत था, अत्यधिक सुरापान करनेपर भी उसकी चेतना जागृत रहती थी। विलासिता उसके जीवनका अंग बन चुकी थी, किन्तु विलासी हाथोसे खड्ग भी उतनी तेजीसे पकड़ता था जितनी समग्रतासे मद्य-चषक। राजप्रासादके बहुमूल्य, विलास और वैभवयुक्त शयन-सिहासनपर जो नीदके लिए छटपटाता रहता था, वही प्रद्योत युद्ध-स्थलमें पाषाणका तकिया लगा, विस्तीर्ण गगनके नीचे सुखकी गहरी नीद सोता था। वह कलाका पारखी और रूपका श्रेष्ठ जौहरी था।

मालवपति प्रद्योतके जन्म-दिवसके उपलक्ष्यमे उज्जयिनीके राज-दरबारमे नृत्य और सगीतका कार्यक्रम चल रहा था। सुदूर देशसे लायी गयी नृत्यागनाएँ नृत्य और गीतोमे व्यस्त थी। सम्राट् प्रद्योत राजसिंहासन पर बैठे थे। अपने स्वभावके अनुसार, मद्य-चषक बार-बार खाली करके रख देते थे। राजदरबारकी साज-सज्जा अभूतपूर्व थी। श्रेष्ठि और सामतक अन्य प्रजाजनों सहित अपने सामाजिक पद और प्रतिष्ठाके अनुसार जन्म-दिवसके उपलक्ष्यमें भेट प्रस्तुत कर रहे थे। कोषाध्यक्ष भेटमे प्राप्त वस्तुओकी सूची बना रहे थे और एक सज्जित मंचपर उन बहुमूल्य उपहारोको रखा जा रहा था। सुरा-सुन्दरीके आकर्षणमे लोग मन्त्र-मुग्ध बैठे थे। नर्तकियाँ गा रही थी—

प्राण! मै प्रतिक्षण उतारूँ आरती।
लोचनोंमें अश्रु कब-कब रुक सके।

और सब निःश्वासने कह दी कथा
मैं पुजारिन बन तुम्हारी प्रीतकी
सह गयी जितनी जगतने दी व्यथा
जिन्दगीकी प्रीत सारी वारती
एक कह-कह सांस सारी हारती
प्राण ! मै प्रतिक्षण उतारू आरती ॥

प्रद्योत सहित उपस्थित दर्शक प्रमुदित हो नर्तकियोपर वहु-मूल्य वस्तुएँ और मुद्राएँ न्योछावर कर रहे थे। सगीत अपने योवनपर था। इसी समय एक युवा पर्यटन-प्रेमी चित्रकारने दरवारमे प्रवेश किया और अपनी अद्भुत कलाकृति कोपाध्यक्षको भेट की। कोपाध्यक्षने उस अद्भुत कलाकृतिको स्वीकार करते हुए अपनी लेखा-पुस्तकमे लिख लिया, 'भेंटकर्ता चित्रकार श्वेताग'।

कोपाध्यक्षने सेवकको वुलाकर भेटमे प्राप्त वस्तुओको मचपर रखनेका आदेश दिया। अत्यधिक प्रकाशमे चित्र जगमगाने लगा, प्रतीत होता था जैसे चित्रित नारी अद्भुत शृंगार किये मंच पर वैठी हो, रगोका अद्भुत समिश्रण, सानुपातिक अग, चित्रित करनेकी अद्भुत शैली, नृत्य और सगीतकी स्वर-लहरियोंके वीच प्रद्योतकी दृष्टि चित्रपर गयी। वह चित्रको विस्मयभरी दृष्टिसे देखता रहा और विचार करने लगा, चित्र अद्भुत है, कलाकारने अपनी समस्त प्रतिभा—सम्पूर्ण कला इस चित्रको चित्रित करनेमे उँडेल दी है। यदि यह निरपेक्ष सौन्दर्य, मात्र कलाकारकी तूलिकाका चमत्कार न होकर प्रकृतिके दुलारभरे हाथोका चमत्कार हो, तो प्रद्योत अपना समस्त वाहुवल, समस्त शक्ति, इस दुर्लभ रूपनिधिको पानेमे न्योछावर कर सकता है। पर उसका विवेक कह रहा था, यह अद्भुत सौन्दर्य कलाकारकी कल्पना और तूलिकाका चमत्कार है।

प्रद्योतने समीप खडी सेविकाओमेसे एकसे कहा, जाओ।

कोषाध्यक्षसे कहो कि चित्रके भेटकर्ताको आयोजनकी समाप्ति तक रोके रहे।

कोषाध्यक्षने स्वयं उपस्थित जनसमूहमेसे चित्रकार श्वेतांगको खोजा और कहा, चित्रकार तुम्हारा भाग्योदय हो चुका है, बहुत सम्भव है, आयोजनकी समाप्तिपर सम्राट् तुम्हे बुलाये, कृपया सूचना बिना सभासे न जाये। सावधानीके लिए कोषाध्यक्षने सुरक्षा सैनिकोको अवगत करा दिया कि मेरी आज्ञाके बिना उस युवकको राजसभा न छोड़ने दी जाये।

एकके बाद एक उत्तेजक नृत्य और मधुर राग-रागिनियोंसे भरे गीत हुए, पर मालवपतिकी उपेक्षाके कारण कार्यक्रमका आकर्षण क्षीण हो गया, सूर्योदय तक चलनेवाला कार्यक्रम मध्यरात्रि में ही विसर्जित हो गया।

सम्राट् दरबारसे उठकर चले गये, एक-एक करके भीड समाप्त हो गयी। राज-दरबारमें रह गये सेवारत चेट और युवा चित्रकार श्वेतांग।

एक क्षण पश्चात् एक दासी आयी और मंचपरसे चित्र उठाकर ले गयी। अलपकाल पश्चात् दूसरी दासी आयी और चित्रकारसे बोली–श्रीमान्! मालवपतिके कक्षमे अविलम्ब पहुँचनेका आदेश है। आइये श्रीमान्, मै आपका मार्गदर्शन करती हूँ। चित्रकार दासीके पीछे-पीछे चला जा रहा था। दासीने संकेतसे प्रवेशद्वार बताया और वह रुक गयी।

प्रवेशद्वारके पश्चात् अनावृत भाग था, जिसमे कुछ सैनिक अस्त्र-शस्त्र लिए खड़े थे। चित्रकार चलता गया—चलता गया, लगभग दो सौ पग चलनेके पश्चात् उसने देखा, एक द्वारके आगे दो युवतियाँ नग्न खड्ग लिए खड़ी है, द्वार पर बहुमूल्य पर्दा डला

है। नारी-रक्षकोंको देखकर श्वेतांगने कहा, कृपया सम्राट्से भेंट हेतु आवश्यक अनुमति प्राप्त करें।

नारी सैनिक—आपके प्रवेश हेतु पूर्वसे अनुमति है और उसने पर्दा उठा दिया।

युवा श्वेतांगने कक्षमें प्रवेश किया। एक चन्दन-निर्मित कलात्मक सिंहासनपर पृष्ठमें उपधान लगाये मालवपति स्वयं बैठे थे। समीप ही एक लघु स्वर्ण-पीठपर विविध प्रकारके मद्य-चषक रखे थे। श्वेतांगने कक्षमें एक उड़ती हुई दृष्टि डाली, वह समझ न सका कि यह विलास-भवन है या लघु शस्त्र-संग्रहालय। कक्षकी भित्तियाँ दो भागोंमें विभक्त थीं। ऊपरी भागमें विविध प्रकारके कलात्मक चित्र टंगे हुए थे, कुछ भित्तियोंपर चित्र अंकित थे और अधोभागमें विविध प्रकारके शस्त्र रखे थे। विलासिता और शस्त्र-प्रदर्शनका कक्षमें अद्भुत संयोग था। श्वेतांगने सोचा—यह शासक साहसी भी है और विलासी भी।

अत्यधिक मद्यपान करनेके कारण प्रद्योतकी आँखें रक्तिम हो उठी थीं। मद्य चषकोंके समीप ही श्वेतांग निर्मित चित्र भी रखा था। मगधपतिने चित्रकी ओर संकेतकर कहा—'यह अद्भुत चित्र किस कलाकारकी कृति है?'

चित्रकार—यह मेरी साधना और श्रमकी उपलब्धि है।

मालवपति—बहुत सुन्दर काल्पनिक चित्र है।

चित्रकार—काल्पनिक नहीं स्वामी, यथार्थ।

यह सुनकर मालवपति प्रद्योतने अपने निचले ओष्ठको दाँतोंसे दबाया—

मालवपति—कौन सौभाग्यशालिनी इतनी रूप-राशिकी स्वामिनी है?

श्वेतांग चौका और स्वामी कहकर उसने अर्धनग्न युवतियोंकी ओर दृष्टिपात किया।

मालवपतिने कहा—प्रद्योत इन्ही रूपसियोके कानोसे सुनता है और इन्हीके सुन्दर नेत्रोसे देखता है। मगधपतिका कोई भी रहस्य इन सुन्दरियोसे नही छिपा। श्वेतागने कहा, स्वामी, यह चित्र कौशाम्बीपति महाराज शतानीककी रूपगर्विता रानी मृगावतीका है। मालवपति सजग होकर बैठ गये, बोले—नही, नही, यह असम्भव है। कलाकार, विभिन्न अगोंका सूक्ष्म चित्रण इस वातका साक्षी है कि तुमने इस चित्रमे अकित नारीको वहुत समीपसे देखा है। महाराज शतानीकके विशाल दुर्गमे तुम्हारा प्रवेश और महा-रानीसे इतनी निकटता असम्भव है। क्या किसी शत्रु राजाके गुप्तचर हो ? कलाकार, छल न करना ?

चित्रकार श्वेताग भयसे कॉप उठा—किन्तु साहसकर वोला, 'महाराज कलाकार प्रतिशोधकी आगसे भडक सकता है किन्तु छल नही कर सकता। इसकी भी एक कथा है। एक वर्ष पूर्व महाराज, शतानीक अपने दुर्गके मध्यमे स्थित रगभवनको चित्र-कारोसे चित्रित करा रहे थे। सम्पूर्ण कार्य मेरी देख-रेखमें चल रहा था। जब मै रगभवनको चित्रित कर रहा था, मैंने रंग-भवनके समीपके एक कक्षके रंध्रोमें से एक नारीकी सुकोमल उंगलियोको देखा। उंगलियोंको देखते ही उसकी सर्वाङ्ग देह मेरी दृष्टिके समक्ष आ खडी हुई। मैंने उस रूपसीको ही रंगभवन-की भित्ति पर चित्रित कर दिया। जव महाराज शतानीक रग-भवन देखने आये तो चित्रको देखकर उनकी आँखोमे खून उतर आया। किन्तु मैने उन्हे विश्वास दिलाया कि मै अयोध्यामे एक देवालयके एक यक्षसे वरदानप्राप्त हूँ। मै किसी भी जीवधारीके देहका कोई-सा भी अंग देखकर उसको सम्पूर्ण देह-छवि चित्रित कर सकता हूँ।

कौशाम्बीके कुरूपतम व्यक्तिको खोजकर मुझे उसकी उंग- 'लियाँ दिखायी, मै उसका चित्र अकित करनेमे सफल रहा, किन्तु— और उसका हृदय पीडा और प्रतिशोधसे भर उठा, चित्रकारने कहा—रग-महलको चित्रित करनेका पुरस्कार मिला—कलाकारने अपना दायाॅ हाथ आगे कर दिया, उसका दायाँ हाथका अंगूठा महाराज शतानीकने कटवा दिया था। महाराज-यक्षके मन्दिरमे मैने पुन साधना की और अब उसकी कृपासे वाम अगुष्ठकी सहा-यतासे यह चित्र अकित किया है। चित्रकारने कहा—स्वामी, महाराज शतानीक जैसे धार्मिक और शुद्ध व्यक्तिके राजमहलमे रूपकी प्रतिष्ठा कहाॅ ? आप चाहे तो दुर्लभ रूप सहज ही प्राप्त किया जा सकता है।

मगधके दूतने कौशाम्बीके दरबारमे प्रवेश किया। महाराज शतानीकने कहा—कहो दूत, मालवपति प्रद्योत सकुशल तो है ?

सदेशवाहक—हाँ, देव।

महाराज शतानीक—सन्देशवाहक, कौशाम्बीके राजदरबारमे आनेका प्रयोजन कहो।

सन्देशवाहक दूतने लम्बी भूमिकाके पश्चात् प्रद्योतका सन्देश व्यक्त किया। राजन्! अहिंसाकी छायामे शान्ति निहित है, धर्मकी छायामे निराकुलता। इस विशाल विश्वमे सौन्दर्यकी कमी नही है। उद्यानमेसे एक पुष्पलताके चले जाने पर उद्यानकी छविमे कोई कमी नही आती। नारीके रिक्त स्थानकी पूर्ति दूसरी नारीसे सहज ही की जा सकती है। सम्राट् प्रद्योत, कौशाम्बीकी पटरानी मृगावतीको अपनी रानी बनानेकी कामना व्यक्त करते हैं।

राजदरबारमे निस्तब्धता छा गयी, कई सामन्तो, श्रेष्ठियो-की तलवारे म्यान छोड़कर एक साथ ही चमचमाने लगी। एक सामन्तने कहा, 'महाराज! सन्देशवाहककी बोटी-बोटी

काटकर एक स्वर्ण-थालमें सज्जितकर कामी प्रद्योतको भेजिये, इस घृणित, असम्मानीय संदेशका केवल एक यही उत्तर सभव है। महाराज शतानीकने गंभीर स्वरमे कहा, 'सभी सामन्त और श्रेष्ठि राजदरबारकी मर्यादामे रहे।' इतना सुनकर समस्त तलवारे म्यानमें चली गयी। महाराज शतानीकने पुनः कहा, मूर्खतापूर्ण सन्देशका अविवेकपूर्वक उत्तर दिया जाए तो प्रद्योत और शतानीकमे क्या अन्तर रह जायेगा। दूत कोई अपराध नही करता, यह परम्परा है।

महाराज शतानीकने दूतसे कहा—

दूत, दासी-पुत्र प्रद्योतसे कहना, उसके पिताके हाथोमें मालवपति कुणिकका रक्त सूखा नही है। दासताके चिह्न अभी प्रद्योतकी हथेलियोंपरसे मिटे न होगे। अभिजात वंशके सस्कार जन्मसे नही मिले तो क्या हुआ? भारतकी पवित्र भूमिमें राजाओकी कमी नही है, उनके आचरणोंका अनुकरण करना सीखे, सुन्दर परायी दासियो और रानियोंपर वासना-भरी दृष्टि डालना छोडे, अन्यथा प्रद्योतकी सन्ताने भूखसे व्याकुल हो, राजपथोपर दम तोडती मिलेगी और कहना—महाराज शतानीकके अहिंसक हाथ शस्त्र चलाना भी जानते हैं। उनके अस्त्र-शस्त्रोंमे दीन-दुखियोंकी सुरक्षा और दुष्टोकी मृत्यु निवास करती है और प्रद्योत दुष्टके साथ कामो भी है।

दूतका प्रतिसन्देश सुन प्रद्योतकी क्रोधाग्नि भडक उठी। वह अत्यन्त क्रोधी स्वभावके कारण चन्द्रप्रद्योत और सैन्य-विस्तार और शक्तिके कारण महासेन कहलाता था। मालवपति चन्द्रने अपनी विशाल सेना सहित कोशाम्बीकी ओर प्रयाण कर दिया।

महाराज शतानीकने युद्धकी विशाल तैयारियाँ की थीं, किन्तु युद्धमे पराक्रम दिखानेकी साव लिए वे अतिसार रोग-

से इस ससारसे उठ गये। महारानी मृगावती निराश्रित हो गयी। कामी प्रद्योत अपनी विशाल सेना सहित कौशाम्बीकी ओर बढता चला आ रहा था, एक दिन उसने कौशाम्बीकी नगर-सीमामे प्रवेश कर ही दिया। महारानी मृगावती सोचती—युद्धकी समस्त तैयारियोके बाद भी युद्धके भविष्यकी घोपणा नही की जा सकती। शत्रु भी युद्ध-कौशलका कीर्तिमान है, उसने अपने बाहुबलसे मालवाकी सीमाओको विस्तार और सुरक्षा प्रदान की है। दैवयोगसे यदि पराजय मिली तो विशाल राज्य और चरित्र दोनो ही विनष्ट हो जायेंगे, यदि मृत्युका वरण करूँ तो सामतो और सैनिकोका मनोबल टूट जायेगा और राज्य सरक्षक-विहीन हो जायेगा। महाराजका अकस्मात् देहावसान, अल्पवयस्क उत्तराधिकारी उदयन, अन्धकारमय भविष्य सभी एकसाथ उसे सोचनेको बाध्य कर रहे थे कि वह क्या करे। वह निराशाके अन्धकारमे डूबती चली जा रही थी। दुर्गके पूर्वीय छोरसे कोलाहलकी ध्वनि सुनकर वह चौक उठी। उसने गवाक्षसे निहारा—आकाशमे धूल-ही-धूल उड रही थी, आकाश मटमैली-सी चादर ओढे प्रतीत होता था। वह भयभीत हो उठी, शत्रुकी सेना कौशाम्बीके पश्चिम छोरपर थी। शत्रुकी सेना यदि पूर्वसे नगरमे प्रवेश कर चुकी तो अब कोई भी शक्ति इस दुर्गको नही बचा सकती। धीरे-धीरे कोला-हलकी ध्वनि स्पष्ट हो गयी, उसने सुना तीर्थंकर वर्द्धमानकी जय, ज्ञातृपुत्रकी जय, त्रिशलानन्दनकी जय, वह आत्म-विभोर हो उठी। उसे लगा कि प्राचीके वातायनसे प्रकाशकी किरणें आ रही है और उसके तिमिरावृत हृदय-कक्षको आलोकित कर रही हैं। मृगावतीके हृदयने कहा, वर्तमान युगमे तीर्थंकर-के चरणोसे अधिक समर्थ आश्रय ही कहाँ? युगकी समस्त शक्तियाँ मिलकर तीर्थंकरके श्रीचरणोमेसे किसी नारीका

अपहरण नहीं कर सकती। विश्वकी समस्त दैनिक, भौतिक और मानसिक पीड़ाओंका उपचार तीर्थंकरके श्रीचरणोंमें निहित है। और वह एक स्वच्छ साटिका धारणकर तीर्थंकरकी जयघाप करते जन-समूहमें विलीन हो गयी। सागरमें बूँद-सी समाहित हो गयी। प्रद्योत उज्जयिनीसे वेसनगर और वेसनगर(विदिशा)से पन्नाके सघन वनोमें होता हुआ कौशाम्बीके पश्चिमी छोर पर सैनिक-शिविर डाले पड़ा था।

सैनिक-शिविरमे, कौशाम्बीमे प्रद्योतके बिखरे हुए गुप्तचरोमेसे एक गुप्तचरने प्रवेश किया और कहा—स्वामी, विलम्ब न करे, रानी मृगावतीको सहज ही युद्ध किये बिना प्राप्त किया जा सकता है। रूपकी देवी मृगावती श्वेतशाटिका पहिने तीर्थंकर महावीरके समवशरणमे असुरक्षित साध्वी चन्दनबाला-के समीप बैठी है। स्वामी, वहाँ अनेक रूपसियाँ बैठी है, वहा तो लगता है रूपका उद्यान है, एक नही अनेको मृगावतियो-को सहज ही…… ..

प्रद्योतकी क्रोधाग्नि भडक उठी, खड्ग म्यानसे बाहर आ गयी, गुप्तचर काँप उठा। प्रद्योतने कहा—मूर्ख, समय, सम्पत्ति और परिश्रम सभी निष्फल हो गया। दुर्गसे निकलते ही महारानी-को वन्दी क्यो नही बनाया ? अब किसकी सामर्थ्य है कि तीर्थं-करके चरणोसे उसे उठा सके। तीर्थंकरके श्रीचरणोमेसे सुवासित पुष्प चुनकर श्रद्धासे शीशपर रखे जा सकते है, उन्हे वासनाभरे अकसे लगाना मृत्युको आमन्त्रित करना है। वह वज्जिगणतन्त्रके नृपसिद्धार्थका पुत्र है। महाप्रतापी चेटक, मगधपति सम्राट् बिम्बसार और अनेको राजा धूलिमे उनके श्रीचरणोमे बैठते है। तीर्थंकरके समवशरणमें अस्त्र-शस्त्र अहिंसक बन जाते है। मंत्र-तंत्र-शक्ति निर्जीव हो जाती उनके दर्शनसे वासना मृत हो जाती है।

वर्द्धमान महावीरका नाम सुनकर ही म्यानसे निकली हुई खड्ग बिना रक्त पिये प्रथम बार वापिस जा रही थी।

विशाल सैन्यदलके बीच भी प्रद्योतको लगा—वह अकेला हो गया है, उसकी स्मृतियोमे तीर्थंकर महावीरका काल्पनिक चित्र घूमने लगा। कैसा होगा यह तीर्थंकर, कैसा होगा वीतरागी दिगम्बर! उसे स्मरण हुआ कि मालवकी राजधानी उज्जयिनी भी कभी उनके श्रीचरणोसे पावन हुई है। तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर अतिमुक्तक नामक श्मशानमे भयानक रुद्रका गर्व नष्ट कर चुके है, मै क्यो इस अद्भुत युगपुरुषके दर्शनोसे वञ्चित रहूँ?

तीर्थंकर महावीरके दर्शनकर उसे लगा जैसे स्वर्णमे किसी अद्भुत शिल्पीने रूपकी सर्वांग सुन्दर प्रतिमा गढ, साँसोका स्पन्दन भर दिया हो और विजनमे स्थापितकर चारो ओर ज्योति बिखेर दी हो। वह निर्निमेष वीतरागी प्रभुको देखता रहा, उसे लगा इस प्रज्ञाके शिल्पीके आगे रूपकी सभी प्रतिमाएँ निर्जीव है। इस निरपेक्ष सौन्दर्यकी कोई उपमा नही, कोई उपमान नही। उसके हाथ जुड गये, शीश झुक गया। प्रभुकी सगीतमय अमृतवाणी झिरती रही—झिरती रही और श्रोतागण उस वाणी-को ऐसे आत्मसात् करते जा रहे थे, जैसे युगोसे प्यासी धरती जलको सोखती जाती है। प्रभुकी देशना पूर्ण होने पर प्रद्योत-की एकाग्रता भग हुई, वह रानी मृगावतीको खोजने निकला। महासती चन्दनबालाके समीप मृगावती बैठी थी, कुतूहलभरी दृष्टिसे वह प्रकृति-प्रदत्त अद्भुत सौन्दर्यको निहारता रहा। वासना हृदय-कक्षमे न जाने कहाँ जा छिपी। प्रद्योतके हाथ जीवनमे प्रथम बार नारीके चरणोकी धूलि लेनेको व्याकुल हो उठे। साध्वी मृगावतीके चरणोमे शीश झुकाकर उसने कहा, साध्वी मृगावतीके चरणोमे मालवपति प्रद्योतका नमन।

साध्वी रानी मृगावतीने अपना हाथ उठाया और प्रद्योत-के मस्तकपर रखा। प्रद्योतके हृदयमें एक विचित्र प्रकारकी अनुभूति जागी और सम्पूर्ण देहमें व्याप्त हो गयी। नारीके स्पर्श-मे प्रद्योतने पावनताकी इतनी कल्पना भी नही की थी। उसकी अनुभूति शब्दोंमे साकार हो उठी, उसने स्वत से कहा, सागर-के असीम खारे जलसे, सरिताका अजुलिभर जल और अमृत-की एक बूंद काफी है। नारी प्रकृति है, उसके पवित्र आॅचल-की छायामें समष्टिकी सुख-शान्ति अकुरित और पल्लवित होती है। वह जलकी खोजमें आया था, अनायास ही अमृत पा गया।

तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर लोक-मगलके लिए नगर-नगर, ग्राम-ग्राममे मगल-विहार कर रहे थे। राजाओकी असूर्यपश्या पत्नियाँ वीतरागी, तीर्थकरके दर्शनोकी प्यास लिए वातायनोमे प्रतीक्षारत रहती, तीर्थंकरके आगमनपर राज-प्रासादोको छोड-कर द्वारपर खडी होकर प्रभुके दर्शनकर परम तृप्ति और आत्मानन्दका अनुभव करती।

वीरसघकी स्थापना हो चुकी थी। तीर्थंकरके भक्त दो भागोमे विभाजित थे--गृहत्यागी और गृहवासी। गृहत्यागी भक्त निरन्तर सघके मूलनायक तीर्थंकर वर्द्धमान महावीरके साथ-साथ विहार करते थे। वीरसंघ चतुर्विध रूपमे अर्थात् मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका रूप था। श्रमणोके सर्वोपरि थे इन्द्रभूति गौतम और आर्यिकाओका नियत्रण करती थी महासती चन्दना, भगवानके मुख्य गणधर थे—इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, शुचि-भूति, सुधर्म, माडव्य, मार्यपुत्र, अकम्पन, अचल, मेदार्य और प्रभास। ये गणधर समस्त प्रकारकी ऋद्धिसे सम्पन्न और द्वाद-शागके वेत्ता थे। महासती चन्दनाके पिता सम्राट् चेटक, सुदूर हेमाग देशके प्रतापी शासक जीवन्धर, सिन्धु-सौवीरके महाराज उदयन तीर्थंकरके चरणोमे आकर प्रवज्या प्राप्त कर चुके थे। कौशाम्बीकी महारानी मृगावती भी साध्वी-पदकी दीक्षा ले चुकी थी, अनेको राजपुत्रियाँ एव राजपुत्र राजकुमार तीर्थंकर वर्द्धमान महा-वीरके श्रीचरणोमे जन्म-मृत्युके बन्धन काटनेका अभ्यास कर रहे थे। वर्द्धमान प्रभुका विशाल संघ था।

अभयकुमार तीर्थंकर वर्द्धमान महावीरसे प्रव्रज्या प्राप्तकर चुके थे और वारिषेण राजप्रासादमें ही विरक्त जीवन बिता रहे थे। तीर्थंकरके चरणोमें जाकर प्रव्रज्या प्राप्त करनेकी पूर्व-भूमिकाका अभ्यास कर रहे थे। कुमार वारिषेण समय-समयपर निर्जल व्रत रखते, सघन वनमें जाकर तपस्या करते, श्मशानमे समाधि लगाते थे।

राजगृहमे सुनयना नामक सुन्दरी वेश्या थी और विद्युच्चर चोर नामक उसका प्रेमी था। एक दिन सुनयनाने मगधकी अग्रमहिषी चेलनाके कठमे एक दुर्लभ आकर्षक कलात्मक हीरोका हार देखा और वह उस हारको पानेके लिए व्याकुल हो उठी। विद्युच्चर चोर एक दिन चौर्यसे प्राप्त आभूषण लेकर सुनयनाके पास आया, गणिकाने उन वस्तुओंको लेना अस्वीकार कर दिया और कहा, विद्युत ! मेरी एक मनोकामना पूरी करो।

विद्युतने कहा–प्रिये इस विश्वमे विद्युतका है ही कौन ? जो भी प्राप्त करता हूँ तुम्हे अर्पित कर देता हूँ। सुनयनाने कहा—विद्युत, गणिकासे प्रणय कौन करता है ? जब तक रूप और यौवन है तब तक गणिका जीती है, रूप और यौवनके समाप्त होते ही वेश्या जीकर भी मृत्युसे बुरी जिन्दगी व्यतीत करती है, उसके हृदयकी आकाक्षाओंकी पूर्ति कौन करता है ?

विद्युत—सुनयना, विद्युतके प्रणयकी परीक्षा न लो। तुम्हारे गीत विद्युतकी साँसें है। तुम्हारा प्रणय ही विद्युतका सम्बल है। विद्युतने अपने दुर्दिनोके लिए कुछ बचाकर नही रखा, उसे विश्वास है कि सुनयना उसकी अन्तिम साँसो तक साथ रहेगी। बोल, रूपसी क्या चाहिए ?

सुनयनाकी आँखोमे कृत्रिम आँसू डबडबाने लगे, **उसने करुण** और नाटकीय स्वरमें कहा, विद्युत, क्या मगध

अग्रमहिषी चेलनाके कठसे रत्नजटित हार अपनी प्रेयसी सुनयनाके कंठमे सुशोभित कर सकोगे ? विद्युतने अभिमानभरे स्वरमे कहा, प्रेयसी ! प्राण माँगती तो दे देता, पर सम्राज्ञी चेलनाके कंठ तक मेरे हाथ जानेमे असमर्थ है। मेरा नियम है कि मगधपति सम्राट् बिम्बसारकी सीमामे, मै कोई अपराध नही करता और राजगृहमे प्रतिष्ठित जीवन व्यतीत करता हूँ। जिस राज्यमे प्रजा अपने द्वार सदैव खुले रखती है उस साम्राज्यके दुर्गमे अपराध करानेका दुराग्रह न करो।

पर सुनयना गणिका थी। ज्यो-ज्यो उसकी आँखोसे आँसू झरते रहे त्यो-त्यो विद्युतका हृदय पसीजता गया और वह महारानीके कठसे हार चुरानेके लिए मध्यरात्रिमे चल दिया।

विद्युत महारानी चेलनाके दुर्गमे गया और दुर्लभ रत्नजटित हार चुरानेमे सफल हो गया, किन्तु वह हारके बहुमूल्य प्रकाशको छुपा न सका। सेवारत राजकीय कर्मचारियोने आवाज दी—कौन हो ? रुको, यह सुनकर विद्युतने तीव्रगतिसे भागना प्रारम्भ कर दिया और भागते-भागते वह श्मशानमे पहुँचा, वहाँ उसने एक युवकको साधनारत देखा और उसके निकट हारको छुपाकर अन्धकारमे विलीन हो गया।

रक्षक-दलने देखा—एक युवक श्मशानमे साधनारत है और उसके समीप ही कोई वस्तु झिलमिला रही है। रक्षक-दलने द्वार पर राजमुद्रा देखी और युवकको बन्दी बना लिया।

महारानी चेलनाके दुर्गमे इस आश्चर्यजनक चोरीकी खोज चल रही थी, सूचना पाकर सम्राट् स्वय चेलनाके दुर्ग तक आये। इसी क्षण रक्षक-दलने सूचना दी, एक युवकके पाससे राजकीय हार उपलब्ध हुआ है और युवकको बन्दी बना लिया गया है, प्रात-राजदरबारमे अभियुक्तको न्याय हेतु प्रस्तुत किया जायेगा।

राजदरबारमे प्रतिदिनके अनुसार मगधपति एव मगधकी महारानी वैठी थी। नगर-रक्षकने बन्दी एव हार-सहित राजदरबार-मे प्रवेश किया। मगधपति और अग्रमहिषी चेलना एव बहुतसे उपस्थित सभासद् आश्चर्यचकित रह गये। स्वय मगधपति और मगधकी सम्राज्ञी चेलनाके धर्मपरायण पुत्र वारिषेण बन्दीके रूपमे खडे थे। महाराज अपने पदकी गरिमा रखनेमे गभीर थे और महारानी चेलना विह्वल हो उठी।

नगर-रक्षकने अभियोजन प्रस्तुत किया देव। मध्यरात्रिमे जब मै रक्षकोकी कर्तव्यपरायणताके निरीक्षण हेतु निकला, एक व्यक्ति हाथमे प्रकाशवान् वस्तु लिए दिखा। मैने उस व्यक्तिको रुकनेका निर्देश दिया, किन्तु मेरी आवाज सुनकर उसने भागनेकी गति तीव्र कर दी। कुछ क्षणोमें वह व्यक्ति आँखोसे ओझल हो गया। मै अनुमानसे उस व्यक्तिका अनुसरण करते हुए श्मशान पहुँचा और इस युवकके समीपसे बहुमूल्य हार हस्तगत किया। बहुमूल्य हार प्राप्त होते ही मगधपतिको सूचना अविलम्ब भेज दी थी। बन्दीने अपना नाम-ग्राम आदि बतानेमें असमर्थता प्रकट की।

मगधपतिने गभीर स्वरमे कहा, "नगर-रक्षक, तुम्हारी सेवाओ को अल्पकाल हुआ है, सम्भव है इसलिए तुम इस युवकका परिचय नही जानते। यह युवक है, महारानी चेलना और मगधपतिका प्रिय पुत्र वारिषेण।

नगर-रक्षक काँप उठा—बोला, देव! मुझे ज्ञात नही था।

सम्राट्का गंभीर स्वर फिर गूँजा—कुमार वारिषेण, हार तुम्हारे पाससे उपलब्ध हुआ है क्या यह सत्य है? तुम्हे अपने पक्ष-समर्थनमे कुछ कहना है? कुमार वारिषेण मौन थे, मौन ही रहे, लगता था जैसे वे किसी कल्पना-जगतमे विचरण कर रहे हो। मगधपति अल्पकाल तक विचार करते रहे, फिर गभीर **स्वरमें** बोले, अभियुक्त वारिषेण उचित अवसर **प्रदान** किये जाने

अपने समर्थनमे कुछ कहना नही चाहते। नगर-रक्षकके द्वारा अभियोजन प्रस्तुत किया जा चुका है, उन्हे चोरीका अपराधी घोषित किया जाकर, मगध-दण्डसहिताके आधीन मृत्युदण्डसे दण्डित किया जाता है। सुवह दण्डाधिकारी श्मशान भूमिमे अभियुक्तको ले जाकर अभियुक्तका शीश धड़से पृथक् कर शव अभियुक्तके परिवारको सौप देगे। राजदरवारमे मृत्युकी-सी नीरवता छा गयी। सभी सभासद् एक स्वरमे वोले, मगधपति! अपने आदेशपर पुनर्विचार कीजिए। राजकुमार वारिषेण अपराधी नही हो सकते, कोई-न-कोई रहस्य है, जो सत्यको आवृत किये हुए है।

मगधपतिने कहा, अभियोजन प्रस्तुत किया जा चुका है, अपराधी मौन है, निर्णय घोषित किया जा चुका है। किसी नवीन परिस्थितिके उत्पन्न हुए बिना राजाज्ञामे परिवर्तन करनेका कोई कारण प्रतीत नही होता और मगधपति सभा छोडकर चले गये। महारानी चेलनामे निर्णय सुननेके उपरान्त सभामे वैठे रहनेकी सामर्थ्य शेष नही रही थी। वे जा चुकी थी। प्रात हुआ, राज-परिवार शोक-निमग्न था। अश्रु-पूरित नेत्रोसे महारानी चेलना अपने प्रिय पुत्रको वधस्थलपर जाते वातायनसे देख रही थी। उनकी ममता ऑसुओके रूपमे साकार हो रही थी। वे सोच रही थी—"मगधकी महारानी कितनी अकिंचन, कितनी निरीह है कि अपने निरपराध पुत्रको भी मृत्युदण्डसे नही बचा सकती है और राजकार्य कितना निर्मम, कितना विचित्र है कि मगधका प्रतिभा और शक्ति-सम्पन्न शासक अपने प्रिय पुत्रको वधस्थल भेज रहा है। विधिकी विडम्बना है, कर्मोकी गति है। महारानी चेलनाके कठका एक हार क्या सम्पूर्ण मगधका राज्य ही उस पर न्योछावर किया जा सकता है? मगधपतिके उत्तराधिकारीके रूपमे क्या एक हार भी वारिषेणके स्वामित्वमे नही आता? हे देव, हे तीर्थंकर,

हे युगपुरुष परमात्मा महावीर ! रक्षा कर, मै तुम्हारी शरणमें हूँ।

राजकुमार वारिषेणको जिन मार्गों, वीथिकाओसे वधस्थल ले जाया जा रहा था, उसमें भीड़के कारण पॉव रखनेके लिए भी स्थान शेष नही था। जनश्रुति कह रही थी—कैसा निर्मम है राजा, कैसा निर्मम पिता है, अपने सुकुमार पुत्रको ही मृत्युदण्ड दे दिया। कोई कहता--कैसा न्यायप्रिय है मगधपति, न्याय करते समय अपने पुत्र और सामान्य नागरिकमे अन्तर करना नही जानता। बहुसख्यामें लोग कह रहे थे—कुमार वरिपेण और चोरी, दो विरोधी बाते है, वारिषेण मगधका सबसे लाडला, सबसे सुकुमार राजकुमार है। वे बिना प्रव्रज्या लिए श्रमण है। राजकुमार वारिषेण वधस्थल पहुँचे।

वधस्थलपर दण्डाधिकारीने पूछा, कुमार वारिपेण, आपकी कोई अन्तिम इच्छा हो तो व्यक्त करे। वारिपेणका दीर्वकाल पश्चात् मौन भग हुआ। वे बोले—बन्धु ! अल्पकाल तक सभी मौन रहे, जब मै आपको पुकारूँ तब दण्ड-कार्य प्रारम्भ करे। दण्डाधिकारीने भारी स्वरमे कहा—अभियुक्त राजकुमारने अल्पकाल सभीके मौन रहने हेतु अन्तिम आकाक्षा व्यक्त की है, सभी मौन रहे। श्मशानमे श्मशान जैसी निस्तब्धता छा गयी।

कुमार वारिषेणने तीर्थंकर वर्द्धमान महावीरकी हृदयसे स्तुति की। आदिमत्र णमोकार मंत्रका नौ बार जाप किया और पुकारा, दण्डाधिकारी।

दण्डाधिकारीने खड्ग उठायी, खड्ग उठी-की-उठी गयी, जैसे किसीने उसे मत्र-कीलित कर **दिया** हो।
श्मशान भर गया और सुवासित हो उठा।
आकाश गूँज उठा। मगधपति

अतिशयकी सूचना मिली तो वे द्रुतगतिसे रथमे बैठकर वधस्थल तक आये ।

मार्गमे महारानी चेलना सोच रही थी—प्रभुने मेरी याचना स्वीकार कर ली, प्रभुका समवशरण जहाँ हो, वहाँ अन्याय कैसे हो सकता है ?

वधस्थलपर चेलनाने पुत्रको वक्षसे लगाकर रुँधे कठसे कहा—पुत्र, राजभवनमे चलो ।

सम्राट् श्रेणिकने कहा—पुत्र, लोकापवाद शासककी सबसे बडी असमर्थता है ।

वारिषेणने कहा—"माँ ! हृदयमे असीम ममता और वात्सल्य छिपाये, मगध जैसे विशाल साम्राज्यकी महारानी कितनी असमर्थ, कितनी निरुपाय है कि अपने लाछित पुत्रको राजदरबारमें वक्षसे लगानेमे भी असमर्थ रही। उनमे इतनी शक्ति भी शेष नही थी कि भरे दरबारमे कहती—मैंने वारिषेणको जन्म दिया है, मैं अपने और उसके रक्तकी शुद्धतासे परिचित हूँ और कुमार वारिषेण निर्दोष है । मगधपतिका पुत्र होनेका सम्मान पाकर भी वारिषेण एक हारकी चोरी करनेका अपराधी प्रमाणित हुआ । मगधकी महारानी वारिषेणकी माॅ न्यायके द्वार न खटखटा सकी और न पुत्रके प्राण-दानकी भिक्षा माॅग सकी । और पिताश्रीको विस्मृत हो गया कि उनके पुत्रकी सात पत्नियाॅ, सात विभिन्न राजाओकी राजपुत्रियाॅ वैधव्यमय जीवन बितानेको बाध्य हो जायँगी । लोकापवादपर सदियोसे नर-नारी उत्सर्ग (बलिदान) होते रहे है, होते रहेगे ।

जगके नाते-रिश्ते कितने अस्थिर, कितने कच्चे धागोसे बँधे है कि क्षणभरमे टूट जाते है । माँ और पिताश्री वारिषेणका अन्तिम प्रणाम स्वीकार करे । वारिषेण अब सर्वज्ञके श्री चरणोकी धूलिमे जा रहा है, जिससे वह निर्भय होकर जगतमे विचरण कर

सके। वे ही मुक्तिदूत हैं, जन्म-जरा-मृत्युसे निर्भयता प्रदान करने-वाले है और कुमार वारिषेण प्रभुसे प्रव्रज्या ग्रहण करने विपुला-चल पर्वतकी ओर चल दिये और मगधपति और मगधकी महा-रानी अश्रुपूरित नेत्रोसे स्तब्ध-सी देखती रह गयी।

एक दिन वारिषेण आहारके लिए जा रहे थे, मार्गमे पलाश-पुरके मत्रीका पुत्र पुष्पडाल मिला। बालसखा वारिषेणको देखकर उनके हृदयमे बाल्यकालकी स्मृतियाँ सजीव हो उठी। उन्होने वारिषेण मुनिको आहार दिया और वे वारिषेणका सम्बोधन सुन श्रमण हो गये।

उपस्थित श्रद्धालु व्यक्तियोको श्रमण आर्यदत्त सम्बोधित कर रहे थे। वारिषेण और पुष्पडाल भी वहाँ उपस्थित थे। श्रमण-श्री आर्यदत्तने ब्रह्मचर्यके सन्दर्भमे कहा, "आत्माका आत्मामे रमण करना ही सच्चा ब्रह्मचर्य है। गृहस्थोको एकपत्नीव्रतकी महिमा समझाते हुए उन्होने कहा, "अनेको परायी रूपसी प्रम-दाओके, गणिकाओके वासनाभरे आलिगनसे अपनी एकमात्र सुरूप-कुरूप पत्नीका आलिगन पवित्र और तृप्तिदायक होता है।"

पत्तोंपर पडी ओसकी बूँदोको विनष्ट होते देखकर जैसे किसी व्यक्तिको संसारकी नश्वरताका बोध हो जाता है वैसे ही पत्नी-प्रसग सुनकर पुष्पडालको अपनी नव-विवाहिता पत्नीकी स्मृति हो आयी। वे विचार करने लगे–मेरी नव-विवाहिता पत्नी न जाने किस स्थितिमे है। युवा देह है, धर्म-साधनाका द्वार तो सदैव ही खुला है, आत्म-कल्याण फिर कर लूँगा। पुष्पडालका हृदय गृहस्थ जीवनमे जानेके लिए आतुर हो उठा।

श्रमण वारिषेणने अपने बालसखा श्रमण पुष्पडालको देखा, उन्हे लगा श्रमण पुष्प आज अशात है, उन्होने पुष्पडालसे सीधा प्रश्न किया—श्रमण पुष्प, लगता है आज मन उदास है?

पुष्पडालने श्रमण वारिषेणके प्रश्नकी उपेक्षा करते हुए कहा—

'मित्र, क्या मुक्तिकी खोजके लिए आयु-संबंधी प्रतिबन्ध है ? धर्म-साधनाके लिए वृद्ध अवस्था क्या बुरी है ?

श्रमण वारिषेणने हँसकर कहा—"श्रमण पुष्प ! लगता है तुमने काल (मृत्यु) पर विजय प्राप्त कर ली है ।

श्रमण पुष्पडाल अपने गृह जानेके लिए अगात हो उठे। उन्होने कहा, "श्रमण वारिषेण, मै घर जा रहा हूँ ।

वारिषेणने कहा, "बन्धु ! मै भी साथ चलता हूँ, मार्गमे मेरे घर राजगृह रुकते हुए जाना, माँ चेलनाके दर्शन किये भी पर्याप्त समय बीत गया है ।

श्रमण वारिषेण और पुष्पडाल साथ-साथ चले जा रहे थे।

श्रमण वारिषेण सोच रहे थे,—मन सारथी है और इन्द्रियाँ अश्व । मन जिस दिशाकी ओर इनकी रश्मि खीच देता है इन्द्रियाँ उसी दिशामे भागने लगती है और पुष्प सोच रहे थे, मृत्यु बहुत दूर है, भोगोको भोगनेके पश्चात् आयु शेप रही तो मुक्तिके पथ पर चरण रखूँगा। प्रकृतिने जो आयुको बाल्यकाल, युवा अवस्था और वृद्ध अवस्थामे विभाजित किया है उसका भी कोई आधार है। विभिन्न दिशामे सोचते, एक पथ पर चलते-चलते दोनों श्रमण राजगृह पहुँच गये। राज-प्रासाद पहुँचते ही महारानी चेलनाको सूचना दी। वे स्वय अपने श्रमण पुत्रके स्वागत हेतु आयी, किन्तु महारानी चिन्तित थी कि दिगम्बर श्रमण आहारवेलाके अतिरिक्त किसी गृहस्थके द्वारे नही जाते ? उनका हृदय शकासे भर उठा।

दुर्गमे उन्होने एक काष्ठ और एक स्वर्ण आसन रखवाया। श्रमण वारिषेण काष्ठ और पुष्पडाल स्वर्ण आसनपर बैठ गये। माँ अपने पुत्रके विपयमे कुछ आश्वस्त हुयी। वारिषेणने कहा, "माँ ! मेरी पत्नियोको शृगारकर आनेकी सूचना भेजिये।"

मगधकी महारानी चेलना यह सुन व्याकुल हो उठी। एक

दिन वारिपेण जब गृहस्थ-जीवनका परित्याग कर रहे थे तब चेलना व्याकुल थी, आज गृहस्थ-जीवनमे प्रवेश करनेकी शंकामात्रसे व्याकुल हो उठी। उन्होने कहा—श्रमण वारिपेण, जब तक मेरी कुल-वधुएँ शृगार कर आये, मेरी शकाओका निवारण करो।

श्रमण वारिषेणने कहा—तथास्तु।

महारानी चेलनाने कहा—श्रमण, क्या वृक्षकी डालीपरसे टूटा हुआ फल पुन. वृक्षकी डालीपर लग सकता है ?

श्रमण वारिषेण चेलनाके प्रश्नके मर्म तक पहुँच गये, उन्हे विश्वास हो गया, माँ अपने पुत्रके पथभ्रष्ट होनेके भयसे व्याकुल है।

वारिपेणने कहा, माँ ! लघु-कथाओ द्वारा प्रसगको समझाना वहुत सरल होता है इसलिए मै एक लघु-कथा सुनाता हूँ।

"सुदूर अतीतमे वसुपाल नामक एक प्रतापी राजा राज्य करता था। सुमती उसकी रूपसी रानी थी। रानीपर वह अत्यधिक अनुरक्त था। एक दिन एक विषधरने रानीको डस लिया। वहुतसे मत्रवादी वुलाये गये, किन्तु विषधर आकर उसे निर्विप करनेको तैयार न हुआ। अनेको प्रयत्नोके पश्चात् मंत्रके प्रभावसे सर्प आनेके लिए तत्पर हुआ, किन्तु मार्गमे अग्नि देखकर उसमे प्रवेग-कर मृत्युको प्राप्त हुआ। माँ • जब सर्प अपना स्वभाव नही छोडता तो साधु कैसे छोड़ सकता है ?

महारानी चेलना पुत्र द्वारा कथित कथामे निहित अर्थ समझ आत्म-विभोर हो उठी। इतनेमे वारिपेणकी रूपसी सातो पत्नियाँ शृ गारकर आ गयी। वारिपेणने दृष्टि उठाकर भी उनकी ओर नही देखा और पुष्पडालकी ओर देखकर कहा, मित्र पुष्प ! घर जाकर क्या करोगे, मगधके सर्व-सुविधा-सम्पन्न दुर्गमें रहो और इन रूपसी ललनाओको भोगो। एक पत्नीसे संतुष्ट नही हुए तो सामाजिक जीवन भी अपकीर्तियुक्त बनाओगे, कुठाग्रस्त जीवन करोगे। यहाँ ऐश्वर्यके सब साधन उपलब्ध हैं।

श्रमण पुष्पडाल लज्जामे गड गये। मित्र इतना रूप, इतना वैभव और प्रतिष्ठा छोडकर भी अपने श्रमण-पदपर अविचल है और मै अपनी कुरूप पत्नीके लिए इतना व्याकुल हूं। श्रमण पुष्पडाल लज्जित हो पुन' आत्म-स्वभावमे स्थिर होनेके लिए 'तीर्थंकर क्षमा करें' कहते हुए विपुलाचल पर्वतकी ओर चल दिये।

वारिषेणने अपना काष्ठ आसन छोडा और माँ और पत्नियोंकी ओर देखकर कहा, "मित्रके कल्याणके लिए मेरी चर्या श्रमण-चर्याके गरिमायुक्त पदसे च्युत हो गयी थी। मै प्रायश्चित्त ले चुका हूँ और धर्मवृद्धि देते हुए वारिषेण भी विपुलाचल पर्वतकी ओर चल दिये।

श्रमण पुष्पडाल तीर्थंकरके चरणोंमे पहुँचे। अमृतवाणीमे प्रभुने कहा, "पुष्पडाल! छोटी-छोटी सरिताएँ वर्षाका गदला जल पाकर बडे-बडे वृक्ष, अट्टालिका और जन-समूहको ध्वस्त कर देती हैं, वैसे ही छोटे-छोटे विकार और वासनाएँ आत्माके चिदानन्द चिद्स्वरूपको पथभ्रष्ट कर देती है।

जिसने मनको बांधा वह सागर बन गया, जिसने जितना बहने दिया उतना ही वह उथला हो गया।" इस अल्प सबोधनके पश्चात् तीर्थंकर वर्द्धमान महावीरने पुष्पडालको विधिवत् दिगम्बर श्रमणकी प्रव्रज्या दी।

●

मध्यरात्रिके अन्धकारमे कुण्डलपुरकी एक सामान्य कुटी मन्द हो रही प्रकाशसे आलोकित थी। एक लघु मृत्तिकापात्रमे मसि रखी थी। एक युवा तूलिसे तन्मयतासे कुछ लिख रहा था। एक बालक और बालिका कक्षकी भूमिपर सो रहे थे। एक तरुणी गभीरतासे लेखन-कार्यको देख रही थी। रात्रिका प्रथम प्रहर व्यतीत होते ही युवतीने बाँसोके बने द्वारको उठाया और भीतरसे कुटियाका द्वार बन्द कर लिया। वह प्रतीक्षा करती रही कि स्वामी लेखन-कार्य बन्द करे, किन्तु युवक मध्यरात्रितक लिखता रहा। मध्यरात्रिके व्यतीत होते ही युवतीने युवककी तन्द्रा भग की और कहा—आर्य, मध्यरात्रि व्यतीत हो चुकी है, क्या आज भोजन नही करेगे ?

युवककी तन्मयता भग हुई और वह बोला—देवि ! तुमने अभी तक भोजन नही किया और न सोयी।

युवतीने कहा—नही स्वामी, आपके पूर्व भोजनकर नरक जानेकी कामना नही है।

युवक उठा और भोजन करने बैठ गया। भोजनमे मोटी-मोटी बाजरेकी दो रोटियाँ शेष थी। नमकसे दोनोने प्रसन्नता-पूर्वक भोजन किया। भोजन करनेके पश्चात् युवतीने क[illegible]
स्वामी, आजकल आपको क्या हो गया है ? पावन [illegible]
छूते तक नही, यजमान चिंतित है,
एक जूनको आटा नही। मै तो
आपके सुखमे सुख मानती रहूँगी

सूखा खाते रहेगे, फटे वस्त्र पहिनते रहेगे। स्वामी, जीवन-निर्वाह-के सम्बन्धमे कोई योजना बनाइये। मै कब तक ऋण माँगूँ, कब तक पडोसियोसे माँग-मांगकर गृह-कार्य चलाऊँ ?

युवक गभीर हो उठा और बोला, देवि! लक्ष्मी और सरस्वती-मे वैर है, पर यह बैर अधिक दिनो तक नही टिकेगा। पारस जिसे छूकर सुवासित हो उठता है उस युगपुरुष तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर पर महाकाव्य लिख रहा हूँ। ऋषभदेव, शकर, राम सभी देवता महावीरमे साकार हो उठे है। समस्त वेदोका ज्ञान उसमे समाहित है। क्या तुम्हे ज्ञात है देवि! युगके श्रेष्ठ यज्ञपति इन्द्रभूति गौतम तीर्थंकरके श्रीचरणोमे बैठकर आत्म-ज्ञानकी पाठशाला चलाने लगे है। देवि, समझो तुम्हारे कष्ट समाप्त होनेवाले हैं। तरुणीको सन्तोष नही हुआ। वह बोली—तीर्थंकर पर महा-काव्यके प्रणयन और सम्पन्नतामे क्या सम्बन्ध है ? युवकने पूर्ण आत्म-विश्वाससे कहा, तीर्थंकरका नाम ही अपने आपमे एक मंत्र है। उसका जाप करने से दुर्दिन भागते है, उस पावन पुरुष पर महाकाव्य लिखनेवाला असम्पन्न कैसे रह सकता है ? चैत्र मासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी आ रही है। वज्जिगणतत्र, मालव, मगध, कौशाम्बी आदि अनेक राज्योमे प्रभुकी जन्म-जयन्ती पर्व आयोजित किया जावेगा, प्रतीक्षा करो, निश्चित ही वह रकताका अंतिम दिन होगा।

युवती—स्वामी आप जाने और वह अपने बच्चोके समीप भूमिपर सो गयी। युवक लेखन-कार्यमे पुन. व्यस्त हो गया।

युवा कविने महाकाव्य पूर्ण किया। तीर्थंकर वर्द्धमानस्वामी-का विहार सर्वाधिक मगधमे हो रहा था। युवकने स्वच्छ वस्त्रकी व्यवस्था की, एक पोटलीमे पाथेय, एक उत्तरीय, एक अन्तरीय, और मृगछाला पीठपर डाल सुदूर मगधकी राजधानी राजगृहीके लिए अपनी यात्रा प्रारम्भ की।

ज्यों-ज्यों प्रभुका जन्म-दिवस समीप आ रहा था उसके पाँवोंकी गति बढ रही थी। तीर्थयात्राके कष्टोंको सहकर चैत सुदी १३को सध्यामे युवा कविने राजगृहमे प्रवेश किया। सम्पूर्ण नगर दीपोंकी ज्योतिसे झिलमिला रहा था। विपुलाचल पर्वत-जहाँ प्रभुका समवशरण था, सम्पूर्ण पर्वतन घृत-प्रदीपोंकी ज्योतिसे जगमगा रहा था। राजगृहमे स्थान-स्थान पर स्वागत-द्वार बने थे, प्रत्येक भवनके आगे दीप रखे थे। वह अद्भुत साज-सज्जा देखकर आत्म-विभोर हो उठा। अनेको अट्टालिकाएँ उसे राज-भवन-सी प्रतीत होती थी। राजगृहके नागरिकोने उसका मार्ग-दर्शन किया और रात्रिका प्रथम प्रहर प्रारम्भ होते-होते उसने मालवपति बिम्बसार श्रेणिकके राजदरबारमे प्रवेश किया।

राजभवनके विशाल प्रागणमे पाँव रखने तकके लिए स्थान नही था। मुक्ता-मणियोंकी मालाओंसे, स्वर्ण-घृत-प्रदीपोसे प्रभुके जन्मदिवसोत्सवके लिए निर्णीत स्थल जगमगा रहा था। एक स्वर्णसिहासनपर सम्राट् श्रेणिक और महारानी चेलना बैठी थी। चेलनाके समीप ही स्वर्णसिहासनोपर अन्य रानियाँ बैठी थी, दायीं ओर मालवके राजकुमार, श्रेष्ठी एवम् सामन्त बैठे थे। इस आयोजनमे मालवके राजकुमार कुणीक अजातशत्रु अनुपस्थित थे। सगीतका कार्यक्रम चल रहा था। रात्रिके प्रथम पहर तक कुण्डलपुरके युवा कवि कार्यक्रम देखते रहे। अवसर पा उन्होने मालवपतिसे निवेदन किया—वैशालीके राजकुमार तीर्थकर महावीरकी जन्मस्थली कुण्डलपुर-निवासी रविदत्त ज्योतिमय भगवान महावीरपर रचित महाकाव्य 'वैशालीकी सुरभि'के कुछ अश पढनेकी अनुमति चाहता है। सभी दृष्टियाँ एक साथ इस निर्धन युवककी ओर आकर्पित हो गयी। सम्राट्ने कहा, सुकवि, अ सम्पूर्ण कार्यक्रमकी रूपरेखा तैयार हो चुकी है, तदनुसार का चल रहा है किन्तु तीर्थकरके चरणोमे श्रद्धा- समन्वित

सुमन अर्पित करनेकी कामनाको अस्वीकार नही किया जा सकता। अतः अल्प समय दिया जाता है, निर्धारित समयमे महाकाव्यके किसी अशका पाठ पूर्ण करे।

आदितीर्थंकर ऋषभसे सम्बन्धित ऋग्वेदकी एक ऋचाको मधुर स्वरसे पाठकर कविने 'वैशालीकी सुरभि' महाकाव्यका प्रथम सर्ग प्रारम्भ किया।

जो मुक्ति-साधनाके आदर्श है, रत्नत्रयधारी है, जन्म-मरणकी छवि देनेवाले है, धर्म-संस्थापक हैं, अग्र नेता है, नये और पुराने ऋषियो द्वारा स्तुत्य है, वह दिव्य-शक्तियो सहित मेरे सान्निध्यमे आये और मुझमे दिव्यशक्तियाँ जागृत करे।

इस मगलाचरणके उपरात 'श्रीवर्द्धमानाय नम' कहकर महाकाव्यके प्रथम सर्गका पाठ कविने आरम्भ किया।

सम्राट् सिद्धार्थने प्रियकारिणी त्रिशलाको स्वप्न-विज्ञानके अनुसार स्वप्नोका अर्थ समझाया। प्रियकारिणी प्रमुदित हो उठी, किन्तु लज्जासे उनके कपोल रक्तिम हो उठे। हिरणी-से नयन झुक गये, हृदय भावनाओसे पूरित हो कल्पना-जगतमे विचरण करने लगा। उन्हे लगा जैसे उनके स्तनोमे पीयूष भर गया है और रेशम-सी स्फटिक-रेख रूपमे प्रवाहित होनेवाली है। उनके नयनोमे एक सुकुमार बाल-छवि साकार हो उठी, फिर वह बालक उनकी गोदमे आकर क्रीडाएँ करने लगा। त्रिशलाने अपने आचलको सरकाया और लम्बी-लम्बी सुकोमल उँगलियोसे कंचुकीके उन्नत भागको छुआ और वह चौककर कल्पना-लोकसे यथार्थसे धरातल पर लौट आई। उन्होने अपने आचलको यथास्थान किया। सम्राट् सिद्धार्थ हँस दिये और प्रियकारिणी लज्जासे रक्तिम हो उठी।

भाव-जगतका सूक्ष्म विश्लेषण सुनकर सम्राट्सहित उपस्थित जनसमूह वाह-वाह कर उठा। कविको दिया निर्धारित समय

समाप्त हो चुका था। महाकाव्यको प्रणामकर कवि अपनी पोथी बाँधने लगा। राज-दरबारकी करतल-ध्वनिसे वातावरण मुखरित हो उठा। सहसा सम्राट्का स्वर सुनायी दिया, आजके सभी कार्य-क्रम स्थगित किये जाते है, केवल कुण्डलपुरके महाकवि रविदत्तके महाकाव्यके पाठको आजके कार्यक्रममे प्रधानता दी जाती है। महाकवि रविदत्तसे अनुरोध है कि वे अपना सशक्त महाकाव्य पाठ प्रारम्भ करे।

महाकवि यह सुनकर प्रमुदित हो उठे, उनका उत्साह द्विगु-णित हो उठा, उन्होने तीर्थकरके जन्मके सन्दर्भमे महाकाव्यका द्वितीय सर्ग प्रारम्भ किया।

ज्योति-अश्वोसे जुते हुए अशुमालीके मनोज्ञ रथमे बैठ चैत सुदी १३ को प्रभु वर्द्धमान विश्वमे अवतरित हुए। उनके जन्मकी सुवाससे विश्व प्रमुदित हो उठा। घर-घरमे श्रमण-संस्कृतिके पुनीत श्लोक गूँज उठे। असीम सम्पदाका स्वामी कुबेर भी सौधर्म-का दास है। ऐसे इन्द्र प्रसूति-गृहके द्वारपर रक्षक बने खड़े थे और इन्द्राणी प्रसूति-कक्षमें महारानी त्रिशलाकी परिचर्यामे रत थी।

बाल्यकालमें वैशालीके राजकुमारको ज्ञानप्राप्तिहेतु गुरुके समीप भेजा। कुमार गुरुजीको भूली हुई ऋचाएँ स्मरण कराने लगे, विस्मृत अर्थ, सन्दर्भसहित समझाने लगे। गुरु ऐसे शिष्यको पा उपकृत हुए।

बाल्यकालमें अल्पवयस्क राजकुमार वर्द्धमान भयंकर विष-धरके फनपर खेले, बारह वर्षकी आयुमे मदोन्मत्त हाथीका मद मुष्टिकाओके सबल प्रहारसे खण्डित कर दिया। मुनि सजय और विजयको तत्त्वोके सन्दर्भमे भ्रान्ति उत्पन्न हुई। महावीरके दर्शन-मात्रसे उनका निवारण हो गया, अज्ञान तिरोहित हो गया। वैशा-लीके राजकुमार वर्द्धमान, वीर, अतिवीर, सन्मति और महावीर-

से सम्बोधित किये जाने लगे। यौवनकी देहरीपर वासनाने हृदय-द्वार खटखटाया, पर निराश हो चली गयी। यौवनके क्षणोमे वर्द्धमानका चिन्तन सुनाकर महाकवि रविदत्तने सभीको, आत्म-विभोर कर दिया। करुण स्वरमे महाकविका स्वर गूँजा—

जन्म - मृत्युके सँग बँधी
साँसोको कैसे मिले अमरता
जगतीके हर पोर-पोरमे
भर दी किसने है नश्वरता
टूटे नही देहको ऐसी,
साँस नहीं क्यो मिल पाती है
हर एककी साँसोको आकर
मृत्यु क्यूँ कर छल जाती है
वर्तमान भी जा, अतीत की
गोदीमें क्यूँ कर सोता है
प्राचीसे जागी किरणोका
अस्ताचल क्यूँ कर होता है।
बिखरा करके सुरभि-सुमन
बगियोमे क्यूँ कर झर जाता है
हर बहारके द्वारे आकर
पतझर क्यूँ कर मुसकाता है।
रक्त सने हाथो हिंसाने
युगका नव इतिहास लिखा है
मांस, मधु, मदिराके पीछे
क्या मानव, क्या सन्त बिका है।
युगके द्वारे किसी उपेक्षित बालक
जैसी खड़ी अहिंसा
स्वर गूँजा, स्वर्ग यदि पाना

नित्य करो यज्ञोंमें हिंसा।
चीत्कार और उच्छ्वासोंका केवल
तुमने स्वर पहिचाना
आँसूकी पीड़ा पहिचानी
रहस्य सिसकियोंका पहिचाना।
राजमार्गके सरल पंथसे
शूलभरे पथ तुमको भाये
समता, क्षमता, करुणाका तुम
दीप सँजोये युगमें आये।
त्रिशला माताकी ममतामें,
बँधकर भी तुम बँध न पाये
नृप सिद्धार्थ राज्य महलका
वैभव तुमको दिखा न पाये।
कुण्डलपुरके राजभवनका
सबका सब आकर्षण हारा
सूर्योदयको रोक सका कब
घनी अमावसका अँधियारा।
चन्द्रपालकीमें प्रभु बैठे
ज्ञान हँसा राग था रोया
जन्म-मृत्युका उगे न अंकुर
ऐसा तुमने क्षण था बोया।
कामदेव-सा रूप स्वरोंमें
अमृत घोल दिया हो जैसे
वर्द्धमानके चरण पड़े वह
माटी महकी चन्दन जैसे।

कवि तन्मयतासे मधुर स्वरोंमें काव्य-पाठ कर रहा था और रामानन्द भाव-विभोर हो मन्त्रमुग्ध-से सुन रहे थे। काव्य-पाठ समाप्त

हुआ, कविकी प्रशंसामे मुखरित करतल-ध्वनिसे सम्पूर्ण सभाभवन गूँज उठा। मगधपति बिम्बसार और चेलना मुग्धभावसे काव्य श्रवण कर रहे थे, समाप्ति पर उन्हे लगा अभी उनके कान तथा मन दोनों अतृप्त हैं। हर्षातिरेकके कारण आत्मविस्मृतिके इस क्षणमे महाराज कविको सम्मानित करना भूल गये। रानी चेलनाने उन्हे उनका विस्मृत कर्तव्य स्मरण कराया। राजाने सभामे घोषणा की कि आजसे रविदत्त मगधपतिके अतिथि हैं तथा प्रभातकी शुभ बेलामे इन्हे महाकविके सम्मानित पद पर अभिषिक्त किया जायेगा। समस्त सभासदोने इस घोषणाका हर्षपूर्वक स्वागत किया।

●

हृदयमे करुणा, दृष्टिमें समता और वाणीमे अद्भुत आकर्षण लिए तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर, आदितीर्थंकर ऋषभदेवके महात्मा पुत्र भरतकी भूमि भारतके कष्टोके निवारणहेतु ग्राम-ग्राम, नगर-नगर विहार कर रहे थे। तीर्थंकरके प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतमके निर्देशपर अनेको श्रमण-श्रमणियाँ श्रमण-सस्कृतिकी ध्वजपताका फहराते हुए सम्पूर्ण देशमें बिखरे हुए थे। यह पुण्य भूमि तीर्थंकरको पा निहाल हो उठी। यज्ञ-कुण्डोसे उठती हुई लौ बुझ चली थी। पशु और नर-मांससे दूषित वायुमण्डल घृत और चन्दनकी सुवाससे सुवासित हो उठा था। यज्ञकर्ता पशुओंकी अपेक्षा श्रीफल माँगकर सतुष्ट हो रहे थे। मास और मदिराके विक्रय-केन्द्र सूने पड़े थे। युग उनकी अमृतवाणी सुननेको आतुर था और प्रभु युगको अपनी अमृतवाणी सुना रहे थे।

अहिंसामें प्रभु निवास करता है। परमात्मा रहता है। अपनी साँसोंकी जितनी सुरक्षा करते हो, जितना प्यार करते हो, उतनी सभीकी साँसोंकी सुरक्षा करो, प्यार करो। स्वयं कष्टोसे भयभीत हो और चाहते हो कि तुम्हारे पथमे कोई शूल न बिखेरे, तब पराये पथमे शूल बिखरानेका दुराग्रह क्यो? सभी प्राणियोमें शक्तिकी अपेक्षा समान आत्माएँ निवास करती है। रूप, रंग, जाति, वर्णभेदकी दीवारे कृत्रिम है। इसका अस्तित्व, इसकी आधारशिला, स्वार्थपर रखी है। इसका आधार शोषण है, इस कृत्रिम व्यवस्थाको अस्वीकार करो। समस्त विश्वके मानव एक ही विभाजित परिवारके सदस्य है, यद्यपि इन्हें एक स्थानपर एकत्रित

नही किया जा सकता, समान आचार-विचारकी शृंखलामे बद्ध नही किया जा सकता, किन्तु प्रेम और मैत्रीके सूत्रमे पिरोकर विश्वमे सुख-शाति बिखरायी जा सकती है। यही विश्वबन्धुत्व है, यही लोकमंगल है।

रक्तसे रक्तकी प्यास बढती है, घृणा जन्म लेती है, द्वेष पल्लवित होता है और विषफल फलीभूत होते है और यह स्वर्ग-सी वसुन्धरा नरकसे भी हीन अवस्थामे पहुँच जाती है। शक्तिसे प्राप्त विजय, विजय नही, शोषण है, जबतक हृदय-परिवर्तन न हो। अहिसा हृदय-परिवर्तनकी एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, प्रणाली है।

धर्म हृदयके भीतरकी कृत्रिम दीवारोको तोड़ता है, सकीर्णताकी जडोको उखाड फेकता है। धर्म न किसी जाति का है, न पथका। वह तो प्राणिमात्रकी धरोहर है। सदियोसे मानव-हृदयने उसे मृत नही होने दिया, अधरोने विस्मृत नही होने दिया, समय की परतोसे ढँकने नही दिया। धर्म आत्माको परमात्मा बननेकी एक परिष्कृत वैज्ञानिक प्रक्रिया है, वह विश्वका सम्बल है।

परस्पर एक दूसरेका उपकार करते हुए जीवन व्यतीत करना जीनेकी वास्तविक कला है। इस कलाकी धर्म शिक्षा देता है। अनन्तकालसे मानव चेतनाके साथ लिपटी सचयकी दूषित प्रवृत्तिको तोडता है, समाजमे सानुपातिक वितरणकी व्यवस्था प्रदान करता है।

इस विशाल विश्वमे प्राणियोकी जो विभिन्न जातियाँ पायी जाती है वह उनके स्वकर्मोकी अर्जित पर्याये है। आत्माके साथ सूक्ष्मतम कार्मणवर्गणाएँ लिपटी हुई है, जो पुद्गलकी पर्याये है और शुभ-अशुभ फल प्रदान करती है। ईश्वर कर्ता नही है, परमपिता परमात्मा एकको दारुण दुःख दे, दूसरेको सुख, एकको कुरूप बनाये, दूसरेको रूपवान—यह सभव नही।

यदि प्रभु ही भेद-भावका व्यवहार करे, तो उसे परमात्मा कौन कहे ? वह तो निरञ्जन, निर्विकार, वीतराग, ज्ञाता-द्रष्टा है। वह सर्वको जानता है, देखता है, किन्तु किसीके कर्मोमे हस्तक्षेप नहीं करता। उनसे उनके-सा प्रभुतासम्पन्न वननेकी प्रेरणा मिलती है। जैसे सघन वृक्षोंकी छायामे शीतलता मिलती है, पर वृक्ष देते नही है, वैसे ही प्रभुके चरणोमे समर्पित होने पर सम्यक्-दर्शन, सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्-चारित्रकी प्रेरणा मिलती है। इन तीनोकी उपलब्धिका प्रतीक है परमात्मा। सभी आत्माओमें परमात्मा वननेकी शक्ति निहित है, उसका विकास करो। समस्त गतियोमे मानवयोनि श्रेष्ठ है, यही मुक्तिद्वार है, जिससे वीतरागतामे प्रवेश किया जा सकता है, उसे प्राप्त किया जा सकता है।

आत्मा चेतन और शरीर अचेतन है। दोनोकी पृथक् सत्ता है, जीव पुद्गलकी क्रिया करता-सा प्रतीत होता है और पुद्गल चेतनकी। आत्माके अनादिकालसे कर्मोसे आवृत होनेके कारण भ्रान्ति होती है कि पुद्गल चेतनकी और चेतन पुद्गलकी क्रिया करता है। वस्तुतः आत्मा जिस भावको ग्रहण करता है उस भावका कर्ता होता है। और पुद्गल (अजीव) तदनुकूल परिणमन करता है, इस भाँति जीव और अजीवका अनादि सम्वन्ध है।

वस्तुका इन्द्रियग्राही स्वरूप और होता है और वास्तविक स्वरूप कुछ और। प्राणिमात्र इन्द्रियोके उस स्वरूपको जानते-देखते है जो इन्द्रियोका विपय है, परमात्मा इन्द्रियोके वाह्य स्वरूप और आन्तरिक स्वरूपको युगपत जानते-देखते है। सामान्यदृष्टि वस्तुके आंशिक सत्यको देखती है, इसलिए सत्य विभाजित—खण्डित प्रतीत होता है और उसमे भिन्नत्वका बोध होता है, पर सत्य अखण्डित है व ध्रुव है, उसमे न विरोध है और

न विरोधाभास। प्रभु जनमानसमें सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्यकी महिमा स्याद्वादशैलीमे जन-जनके अधरों तक पहुँचा रहे थे।

ईसासे लगभग छह्सौ वर्ष पूर्व भारतकी भूमिमे जब तीर्थंकर वर्द्धमान महावीरने धर्मतीर्थकी स्थापना की, उस कालमे अनेको लोक-सम्मानित दार्शनिक इस पुण्य भूमिपर विचरण कर रहे थे। कपिलवस्तुके महाराज शुद्धोदनके पुत्र तथागत महात्मा बुद्ध जन्म-जरा-मृत्युके दु:खोसे भयभीत हो मध्यममार्गद्वारा मुक्तिका पथ प्रदर्शित कर रहे थे। तीर्थकरोकी यशस्वी परम्पराके श्रमण मकखलि गोशालक स्याद्वादके एक अशको सत्य समझकर एकात मिथ्यात्वका पोषण कर रहे थे। पूर्ण काश्यप और प्रकुध कात्यायन अक्रियावादी थे और समस्त सद्-असद् कर्मोंको निष्फल बता रहे थे। सजय वेलट्ठिपुत्र विचित्र मान्यताओमे बँधे थे। दर्शनसे उनका तात्पर्य था, मानवकी सहज बुद्धिमे भ्रम डाला जाये और वह कुछ निश्चय न कर सके। वे भ्रान्त धाराओकी पुष्टि कर दार्शनिक योग्यतासम्पन्न पार्श्वपरम्परासे भटक गये थे। इसके अतिरिक्त अनेको लोक-सम्मानित श्रमण विचरण कर रहे थे। यज्ञोमे पशु और नरबलिकी अमानवीय प्रथा प्रचलित थी। चार्वाक-भौतिकवादी विचार जनमानसके अग बन गये थे। उनका कथन था कि ससारमे पाप-पुण्य सब व्यर्थ है, भोग ही जीवन है मृत्युपर सब अशेष हो जाता है। दर्शनके ऐसे सक्रामक कालमे तीर्थंकर वर्द्धमान महावीरने युगको नयी चेतना, नयी दिशा दी। जीवनभर तीर्थंकर महावीर सत्यका प्रचार करते रहे किन्तु उनके अधरोने किसी भी दार्शनिककी आलोचना नही की, किसी मान्यताको मिथ्या नही बताया। वे हृदयमे लोकमगलका दीप जलाये प्रेम और सत्यका आलोक बिखराते रहे। लोकमगलकी भावनासे प्रभुने मध्यके काशी, कौशल, कौशल्य, कुसध्य,

आश्वहर, साल्व, त्रिगर्त, पांचाल, भद्रकार, पाटच्चर, मौक, मत्स्य, कनीय सूरसेनमें विहार किया। कलिग, कुरुजागल, कैकेय, आत्रेय, कंबोज, यवनश्रुत, सिधुगंधार सुरभीरु, दशेरुक, बाड-वाम, भारद्वाज और काथतीय देशोमे भ्रमण किया। वैशाली-वणियग्राम, राजगृह, नालन्दा, मिथिला, भद्रका, आलाभिका प्रणात भूमि, श्रावस्ती आदि देशोंकी भूमिको उन्होंने पावनता प्रदान की। दीर्घ यात्राके पश्चात् प्रभु राजगृह लौटे।

●

मगधकी राजधानी राजगृहीमे एक नेपाली वणिक् रत्न-कम्ब्रल बेचने आया। एक-एक कम्बल इतना मूल्यवान था कि सामान्य सम्पन्न व्यक्तिकी क्रय-सीमासे परे था। राजगृहीके सम्पन्न वणिक् रत्नकम्बलोको लालसाभरी दृष्टिसे देखते थे, किन्तु मूल्य सुनकर कोई क्रय करनेका साहस नही करता था। घूमते-घूमते रत्न-कम्बलविक्रेता मगधपतिकी सभामे पहुँचा। मूल्य सुनकर मगध-पतिने कोषाध्यक्षको बुलाया, कोषाध्यक्षने कहा—देव! मगधके कोषमे सम्पत्तिकी कोई कमी नही है, किन्तु सीमाएँ असुरक्षित है, आये दिन युद्धोका भय बना रहता है, सैनिकोकी वृद्धि प्रतिदिन की जा रही है, तोपो और तलवारोके निर्माण हेतु इस्पात प्रतिदिन क्रय किया जाता है। मगधपतिने विचार करनेके उपरान्त रत्न-कम्वलोको क्रय करना अस्वीकार कर दिया। निराशाकी मनो-स्थितिमे वणिक् राजगृहीकी वीथिकाओमे घूम रहा था। एक दासीने पूछा, भद्र! क्या बेचते हो? व्यापारीने निराश स्वरमे कहा, देवि! रत्नकम्बल बेचता हूँ। राजगृहकी प्रशसा सुनकर सुदूरसे आया था, किन्तु मगधपतिने ही रत्नकम्बलोको क्रय करना अस्वीकार कर दिया। देवि! मगधराज्यमे सम्पन्नता भले ही हो, किन्तु कलात्मक वस्तुओके प्रति आकर्षण नही, रत्नकम्वलोकी प्रशसा तो सभी करते हैं, क्रय कोई नही करता। सहसा समीपकी अट्टालिकासे आवाज आयी, रेवती, यह परदेशी वणिक् क्या बेचता है, इससे कहो कि अट्टालिकाकी स्वामिनी बुलाती है। व्यापारीने सोचा, जिस वस्तुको मगधपति क्रय करनेमे असमर्थ रहे, उसे अट्टालिका-

की स्वामिनी क्या खरीदेगी। किन्तु ग्राहक कैसा भी हो, व्यापारीको माल दिखाना ही पड़ता है। वणिक्ने अट्टालिकामे प्रवेश किया, अट्टालिकाकी स्वामिनी रत्नकम्बलोको देखते ही मोहित हो गयी और उसने समस्त रत्नकम्बल अपनी पुत्र-वधुओके लिए क्रय कर लिये। वणिक सोच रहा था–मगध भी विचित्र राज्य है, मगधपति जिस वस्तुको क्रय करनेमे असमर्थ रहे उस राज्यकी एक विधवा श्रेष्ठिपत्नीने मुँहमाँगी मुद्राएँ चुका दी।

प्रातः वणिक् प्रसन्न मुद्रामे राजगृहीके दर्शनीय स्थलोको देखने जानेकी तैयारीमे व्यस्त था कि सम्राट् श्रेणिक बिम्बसारके दूतने आकर कहा, परदेशी वणिक् मगधपतिने अविलम्ब स्मरण किया है। विदेशी वणिक्ने राज-दरबारमे प्रवेश किया, वणिक्को देखते ही सम्राट् बिम्बसारने कहा—श्रेष्ठि, रत्नकम्बल क्यो नही लाये, महारानी चेलना रत्नकम्बल क्रय करना चाहती है। वणिक्ने कहा—देव! रत्नकम्बल तो आपसे भेट करनेके पश्चात् ही कल बिक चुके हैं।

सम्राट्—किसने क्रय किये है?

वणिक्—महाराज! राजगृहीमे सम्पन्नता असीम है। एक श्रेष्ठिकी विधवा पत्नी भद्राने समस्त रत्नकम्बल क्रय कर लिये।

सम्राट्—कितना मूल्य चुकाया?

वणिक्—पन्द्रह लक्ष मगधकी स्वर्णमुद्राएँ।

सम्राट् आश्चर्यचकित रह गये। चेलनाकी इच्छापूर्तिके लिए सम्राट्ने भद्राके पास राजकर्मचारी भेजकर रत्नकम्बल मँगाये।

भद्राने विनम्रतापूर्वक सन्देश भेजा, "मगधपतिकी इच्छापूर्ति कर भद्रा और उसका परिवार गौरवका अनुभव करता—किन्तु खेद है कि रत्नकम्बलोको छोटे-छोटे भागोमे विभक्तकर मै अपनी पुत्र-वधुओंको पाँव पोछनेके लिए दे चुकी हूँ।

महाराजने भद्राको आमन्त्रित किया। भद्राने प्रत्युत्तर भेजा, आपका आमन्त्रण पाकर भद्रा-परिवार उपकृत हुआ, किन्तु मेरी अभिलापा है कि मगधपति यदि मेरी कुटियापर पधारे और उपकृत करे तो सम्राट्का स्वागत कर भद्रा और उसके परिवार-को असीम सुख मिलेगा। भद्राने स्वयं आकर भी सम्राट्को आमन्त्रित किया। सम्राट् विम्वसार इस असीम सम्पदाकी स्वामिनीका भवन देखनेके लोभको सवरण न कर सके और उन्होने भद्राका आमत्रण स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन मगध-पति सम्राट् विम्बसार भद्राके निवास पर गये। वाहरसे भवन देखकर उन्हे लगा ऐसे भवन तो राजगृहीमे अनेको हैं, किन्तु अट्टालिकामे प्रवेश करने पर कक्षकी सज्जा, बहुमूल्य सिहासन, दुर्लभ कलाकृतियाँ, चित्र, कालीन, विविध सज्जाकी वस्तुएँ देखकर विस्मित हो उठे। श्रेष्ठि-पत्नी भद्राने सम्राट् श्रेणिक विम्बसारका यथोचित स्वागत किया। तत्पश्चात् सप्तखण्डपर अपने पुत्र शालि-भद्रको बुलाने गयी।

भद्राने कहा—आयुष्मान भद्र, मगधके गौरव श्रेणिक बिम्ब-सार पधारे है।

शालिभद्र—माँ, मुझे क्यो कष्ट देती हो, जो क्रय करना हो, कर लो, जो मूल्य चुकाना है, चुका दो।

भद्रा—शालिभद्र! मगधके गौरव श्रेणिक विम्बसार कोई क्रेता-विक्रेता नही है, वे विशाल मगधके प्रतापी सम्राट् है, हमारे स्वामी है।

शालिभद्र सातवे खण्डसे द्वितीय खड तक आये, उनकी साँस भर आयी, अग-अगमे पीडा भर गयी। सम्राट् श्रेणिक बिम्बसारने देखा, एक सुन्दर और सुकुमार युवक बहुत विनम्रतापूर्वक उन्हे प्रणाम कर रहा है। उन्हे लगा, प्रकृति भी अद्भुत कार्य करती है, नारीसे अधिक सौन्दर्य और सुकोमलता उसने इस युवकको प्रदान

की है। मगधमें जहाँ एक-से-एक बढकर बलिष्ठ और पराक्रमी युवक है वहाँ दूसरी ओर ऐसे सुकुमार युवक।

युवक कुछ कालतक सम्राट्के निकट बैठा रहा किन्तु अल्पकालके पश्चात् ही वह अपने कक्षमे जानेके लिए आतुर हो उठा।

सम्राट् श्रेणिक बिम्बसारने शालिभद्रके अग-अग पर स्वेद-बिन्दु देखकर शालिभद्रसे कहा, आयुष्मान शालिभद्र! चिरजीवी हो, जाओ, विश्राम करो, कभी-कभी राजसभामे भी आया करो।

युवक शालिभद्र अपने विश्राम कक्ष तक आते-आते विचारोमें डूब गया, उसने स्वत से कहा, शालिभद्र तू परतत्र है, तेरा भी कोई स्वामी है, वह चाहे तो मेरी प्रत्येक गतिको तेरी भावनाओ-के विपरीत नियंत्रित कर सकता है। वह अपने कक्ष, अपनी विशाल अट्टालिकामें एकाकी जीवन व्यतीत करते-करते भूल गया था कि उसका कोई स्वामी है। यह ससार है, यहॉ जन्म है, जरा है, मृत्यु है, भौतिक सुखोने उसकी मानसिक चेतनाको निष्क्रिय कर दिया था। शालिभद्रकी बत्तीस पत्नियॉ थी। भोगोंका परि-णाम उसे आज ज्ञात हुआ कि अपने भवनके सोपानपर चढते उतरते ही उसकी स्वांस भर गयी, अग-अगमे शिथिलता व्याप्त हो गई। उसका मन भोगोसे विरक्त हो नवीन सुखकी खोजमें उलझ गया। उसकी सोयी मानसिक चेतना जागृत हो उठी। उसे लगा, सम्पूर्ण अट्टालिकाका, उसके कक्षका वातावरण कृत्रिम है। कक्षमे रत्नोका प्रकाश निरर्थक है। जब मात्र खिडकियोको खोलनेसे रत्नोंसे अधिक प्रकाश उपलब्ध हो सकता है तब रत्नोका प्रकाश व्यर्थ है। वर्षो बाद उसने अपने शयनकक्षके वातायनोको खोला। प्रकाश और पवनने कक्षमे एकसाथ प्रवेश किया और शालिभद्र-की दृष्टि सुदूर पर्वतश्रृखला तक चली गयी। कुछ क्षणमे ही स्वेद विलीन हो गया, अग-अगमे स्फूर्ति आ गयी, वह नवीनताका

अनुभव करने लगा, उसे लगा, प्रकृतिका सुरम्य वातावरण उसे बुला रहा है, वह अपलक प्रकृतिप्रदत्त सौन्दर्यको निहारता रहा। सहसा उसकी सबसे प्रिय पत्नीने कक्षमे प्रवेश किया। आज नारीमे उसे कोई आकर्षण नही लगा, उसने अपनी पत्नीकी ओर उपेक्षा-भरी दृष्टिसे देखा और वातायनसे बाहर झाँकनेको दृष्टि उठायी। वर्षोसे बन्द वातायनोके बाहर मकडीका जाल लगा हुआ था। सहसा एक उडती-उडती नन्ही-सी रगीन तितली आयी और जालसे टकरायी, मकडीने पलभरमे—उसके चारो ओर जाल पूर दिया। रगीन तितली अभी-अभी स्वच्छन्द उड रही थी, वह जाल मे निष्प्राण हो चुकी थी, किन्तु मकडी फिर भी जाल बुने जा रही थी। शालिभद्र यह दृश्य देखकर क्षणभरमे ही दार्शनिक बन गया। उसने स्वयसे कहा, मृत्यु निश्चित, जाल अनिश्चित है। शालिभद्रने अज्ञात भयसे आँखे बन्द कर ली, किन्तु उनकी बन्द आँखोमे भी मकडी रगीन तितलीके चारो ओर जाल बुनती दिखायी दी। शालिभद्र अशात हो उठे।

दो प्रहर पश्चात् शालिभद्रने देखा, द्वार पर रथ सज्जित खडा था। शालिभद्रने दासीसे पूछा—इस समय भ्रमणको कौन जा रहा है ?

दासी—स्वामिन्! गृहस्वामिनी तीर्थंकर महावीरके दर्शनार्थ और अमृतवाणी सुननेके लिए विपुलाचल पर्वतपर जा रही है।

शालिभद्रने कहा—दासी, माँसे कहो कि शालिभद्र भी आज प्रभुके दर्शनार्थ जायेगे।

शालिभद्र और भद्रा विपुलाचल पर्वत पर पहुँचे। उनके पहुँचनेके कुछ क्षण पूर्व ही सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार अपने परिवार सहित विपुलाचलपर्वतपर पहुँचे और वन्दनाकर प्रभुकी प्रदक्षिणाएँ दे रहे थे। शालिभद्रने तीर्थंकरके श्रीचरणोमे सम्राट् बिम्बसारको शीश झुकाये देखा और स्वयसे कहा—माँ, जिसे मेरा

स्वामी बता रही थी वह तो तीर्थकरके श्रीचरणोंमें शीश झुकाये खडा है। वह शृंगार और वस्त्रविहीन तीर्थकरकी दिगम्बर देहको श्रद्धासे देखता रहा, फिर उसने माँसे पूछा, माँ! तीर्थकरके चरणोंमे वन्दनाकर मै क्या कहूँ।

माँने स्नेहसिक्त वाणीमें कहा—शालि, व्यर्थ चिन्तित न हो। तीर्थकरके दर्शनोंकी सार्थकता तो तभी है जब हृदय स्वतः ही भक्तिपूरित हो और अधर स्वय ही गाये।

अल्पकाल पश्चात् शालिभद्र तीर्थंकरके चरणोके समीप पहुँचे, अधर स्वय ही बोल उठे—देवोंके देवता, सम्राटोके सम्राट इस अकिचन शालिभद्रको अपने समर्थ श्रीचरणोमे स्वीकार करो।

दिव्यध्वनि सुन शालिभद्र विभोर हो उठे और देशनाके अन्तिम शब्द दोहराते हुए विपुलाचलपर्वतपरसे घर लौट आये। शालिभद्रने घर आकर भद्रासे कहा—माँ, मै अपने आपको तीर्थकरके पवित्र चरणोमे अर्पित कर चुका हूँ, प्रभुसे प्रवृज्या लूँगा। भद्रा कुछ क्षण विस्मयसे अपने पुत्रको निहारती रही। फिर बोली, "शालि, अपनी देहको देख, क्या भूख-प्यासकी पीडाको सह सकेगा, क्या ग्रीष्मकी दोपहरियों और शीतकी सन्ध्यामें पद-यात्रा कर सकेगा? रात्रिमे गगनके नीचे दिगम्बर सो सकेगा? तेरी सुकुमार देह साधनाके लिए नही बनी, जैसा जीवन चल रहा है वैसा चलने दे।

शालिभद्रने कहा—माँ, प्रवृज्या लिए बिना इन बातोका उत्तर कैसे दूँ। माँ, हृदय जब कष्ट सहनेको तत्पर हो गया है तो देह भी सब कष्टोको सह लेगी। माँ, वैशालीके राजकुमारको सुखभरी शय्या असह्य हो उठी थी, तब शालिभद्र भौतिक सुखोसे ऊब जाये, तो इसमे आश्चर्य क्या?

भद्राने सोचा—तीर्थकरके दर्शन और समवशरणके अद्‌भुत वातावरणका प्रभाव है। विरक्तिका ज्वार जितनी तीव्रगतिसे उठा

है उतनी ही शीघ्र बैठ जायेगा। यदि शालिभद्रने दीक्षा ली और उत्तेजनामे बढाये चरण भटक गये, तो इसका लौकिक और पारलौकिक जीवन नष्ट हो जायेगा। इस प्रसंगको टालनेहेतु भद्राने कहा, पुत्र शालिभद्र, ऐसा कर, जिससे माँकी बात रह जाये और पुत्रकी भी, तू एक शय्या प्रतिदिन परित्याग कर। बत्तीस दिन पश्चात् तीर्थंकर प्रभुसे प्रवृज्या लेनेहेतु तुझे अनुमति देती हूँ।

शालिभद्रने सहज स्वरमे कहा, अच्छा माँ, जैसी तुम्हारी आज्ञा।

भद्राने विचार किया, शालि-जैसा सुकुमार युवक क्या प्रवृज्या लेगा, क्षणिक आवेश है, अल्पकालमे ही समाप्त हो जायेगा। शालिभद्र विचार करने लगा, एक शय्या प्रतिदिन परित्याग करनेका अर्थ है प्रतिदिन एक शय्या ग्रहण करना।

शालिभद्रने अन्तिम रात्रि रेवतीके कक्षमे बितायी। रेवतीने कहा, स्वामिन्! ज्ञात हुआ है कि आप प्रातः गृहत्याग कर रहे हैं।

शालिभद्र—गृहत्याग तो कर चुका हूँ, अब तो माँकी आज्ञाका पालन कर रहा हूँ।

यह सुनकर रेवतीने शालिभद्रके गलेमे बाँहे डाल दी। शालिभद्रने रेवतीकी बाँहोको गलेसे पृथक् नही किया। रेवतीने कहा, जब मुक्ति-पथका ही अनुसरण करना था तो बत्तीस रूपसी पत्नियोसे पाणिग्रहण करनेकी क्या आवश्यकता थी।

शालिभद्रने कहा, "देवि! इस अपराधका शालिभद्र महान अपराधी है। रेवती, भविष्यमे इस भूलको न दोहरा सकूँ, इसलिए भी भोगोका परित्याग आवश्यक है। देवि, वर्तमानका अपराध भविष्यके लिए प्रायश्चित्त है।

रेवतीने कहा, स्वामी, प्रकृतिने नारी-इतिहासका अधिकाश भाग करुणाभरे आँसुओसे लिखा है।

शालिभद्रने कहा—देवि ! हृदयने भोगे हुए भोगोको भोगना अस्वीकार कर दिया, अब इस निर्बल देहसे कब तक भोगोको भोगूँगा। लगता है, भोगोने मुझे भोगना प्रारम्भ कर दिया है, इसलिए मृत्युके पासमे जानेकी अपेक्षा मुक्तिकी पावन गोदमे जानेका सकल्प लिया है।

रेवती—स्वामी, नारीका हृदय युगो-युगो पुराना दु.खोका सग्रहालय है। देव, वह पीड़ाओसे प्यार करना जानती है, आप मृत्युके बन्धनमे जानेकी अपेक्षा मुक्तिपथकी सुवाससे जीवनको सुवासित होने दे। नारीके सुख पुरुषके सुखोपर समर्पित होते रहे हैं और होते रहेगे। सूर्योदय होते ही रेवती कक्ष छोड़कर चली गयी और शालिभद्र विपुलाचलपर्वतपर, जहाँ युगके शाश्वत सूर्य ज्योतिर्मय तीर्थंकर महावीर ज्ञान-रश्मियाँ बिखरा रहे थे।

पच्चीससौ वर्ष पूर्वकी घटनाएँ प्रतिक्षण इतिहासके लिए नित नूतन सामग्री प्रदान कर रही थी। विलास और वासनाके अकमे मुकुलित सुमन एकके बाद एक सर्वज्ञ तीर्थंकर वर्द्धमान महावीरके चरणोमे अर्पित होते जा रहे थे। वत्सराज शतानीकके पुत्र सम्राट् उदयन वयस्कताको प्राप्त कर चुके थे। उनका व्यक्तित्व अद्भुत था। वीणाके सुकोमल तार उदयनकी उँगलियोका स्पर्श पाकर जिस सगीतकी सृष्टि करते वह कल्पनातीत था। मदमस्त गजेन्द्र भी उनकी वीणाकी झकार सुनकर वशवर्ती बन जाते। उनके आकर्षक व्यक्तित्वकी आभाके समक्ष आर्यावर्तके सभी राजाओके व्यक्तित्व धूमिल पड गये थे। रौरकपुर वत्सकी राजधानी थी। महाराज उदयनकी सुव्यवस्थाके कारण वह वीतभय कहलाने लगी थी।

तीर्थंकर वर्द्धमान महावीरके जीवनकालमे ही उनकी प्रतिमाएँ चैत्यालयोमे प्रतिष्ठित होने लगी थी, उनके अद्भुत व्यक्तित्वके कारण उनपर महाकाव्योका सृजन प्रारम्भ हो गया था। युग उनके चरणोमे अपनी श्रद्धा-भक्ति अर्पित कर रहा था। ज्योतिर्मय वर्द्धमान लोकमगलके आदर्श थे, युगकी पीड़ित साँसोके लिए उनकी वाणी अमृत-औषधिरूप थी। वत्सके वर्तमान शासक सम्राट् उदयनके पिता शतानीकके कालसे वीतभयमे तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर स्वामीकी एक मनोज्ञ चन्दनके काष्ठकी प्रतिमा थी और सर्वज्ञके श्रीचरणोमे प्रव्रज्या लेनेके पूर्व वत्सकी महारानी मृगावती इस प्रतिमाकी आराधना करती थी। यह मनोज्ञ तीर्थंकर

प्रतिमा रम्य राजोद्यानमें एक चैत्यमे स्थापित थी, जिसकी देख-रेख एक प्रौढ दासी करती थी। दैवयोगसे दासीका देहावसान हो गया और उसका कार्य उसकी रूपसी पुत्री माधवीने ग्रहण किया।

दासी माधवी महत्वाकाक्षी और चतुर थी। वह दासी होकर भी सम्राज्ञी बननेके सपने बुनने लगी थी। दासी माधवीकी दृष्टि मालवपति प्रद्योत तक गयी। प्रद्योतकी विषयासक्तिकी कथाएँ सर्वत्र व्याप्त थी। प्रद्योत ही ऐसा शासक था, जो सौन्दर्यके लिए जीवनपर्यन्त भटकता रहा, ज्यों-ज्यो उसकी आयु बढ़ रही थी, वासनाका वृक्ष पल्लवित होता चला जा रहा था।

माधवीने प्रद्योतको सन्देश भेजा, वत्सराजकी रूपसी दासो माधवी तीर्थंकरकी अद्भुत चन्दनकी प्रतिमा, महारानी मृगावतीके अमूल्य आभूषण, जो उसकी माँके पास थे, उनके सहित मालव-पतिकी सेवामे आनेकी याचना करती है। प्रद्योत तो ऐसे अवसरोकी प्रतीक्षामे ही रहते थे, उन्होने सन्देशका उत्तर भेजा, वत्स और मालवके सीमान्त प्रदेशमे माधवी तीर्थंकर प्रतिमा सहित आये। प्रद्योत उसे सहर्ष स्वीकार करनेको तैयार है। निश्चित दिनके पूर्व ही प्रद्योत एक सैनिक दलसहित सीमापर पहुँच गया और तीर्थंकर वर्द्धमान महावीरकी प्रतिमा और बहु-मूल्य आभूषणोको लिए माधवी मालवपतिसे जा मिली। तीर्थंकर महावीरकी सुवासित अद्भुत प्रतिमा, बहुमूल्य आभूषणों और रूपसी माधवी दासीको पाकर वह प्रसन्न हो उठा। सम्राट् उदयनकी सीमाएँ सुरक्षित थी। देश, विदेशोमें उनके चतुर गुप्त-चर घूमते थे। रात्रिके अन्धकारमे उदयन मालवपति प्रद्योत और उसकी सेनासे जा टकराया। प्रद्योतको कल्पना भी नही थी कि मालवकी सीमामे उदयन आनेका साहस करेगा। अन्धकारमें भगदड़ मच गयी। अकस्मात् आक्रमणके कारण प्रद्योतकी सेनाके पाँव लड़खडा गये। प्रद्योत अपने स्वभाव और साहसके अनुसार

वीरतासे लडा, किन्तु विलासी हाथोमें खड्ग कमजोर पड गयी और मालवपति प्रद्योत वन्दी बना लिये गये। दासी माधवी भागते हुए सैनिकके साथ भागनेमे सफल हो गयी। प्रद्योतका जीवनपर्यन्तका सचित अहम् चूर-चूर हो गया। महाराज उदयनने उसके मस्तक पर दासीपति प्रद्योत अकित करा दिया। प्रद्योत लज्जा और आत्मग्लानिमे रौरकपुरके बन्दीगृहमे जीवन व्यतीत कर रहा था। प्रद्योतके पुत्र गोपालकको राज्य-सचालनका अनुभव नही था। वे सोच नही पा रहे थे कि सम्राट् प्रद्योतको छुडानेके क्या प्रयत्न किये जावें।

श्रमण सस्कृतिका महान पर्व पर्युषणपर्व आया। पर्युषणपर्व भ्रातृत्व और मैत्रीका पर्व है। पर्वकी समाप्ति पर उत्तम क्षमापर्व मनाया जाता है, शत्रु-मित्र सभी गले मिलते है और अपने पूर्व कृत्योको विस्मरणकर भ्रातृत्वपूर्ण नया जीवन प्रारम्भ करते हैं, विगत वैमनस्यपूर्ण जीवन विस्मरण करनेका सकल्प लेते है। इस पुनीत दिवसपर महाराज उदयनको सम्राट् प्रद्योतकी स्मृति हो आयी, वे विचार करने लगे–प्रद्योतका कोई अपराध नही है, उन्होने रौरकपुरकी सीमामे प्रवेश तक नही किया। वर्द्धमान प्रभुकी प्रतिमा ले जानेके वे दोषी नही है। इस पुण्य पर्व पर वे एक शासकका सम्मान पानेके अधिकारी है, क्षमाकी भावनासे सम्राट् उदयन स्वय ही बन्दीगृहमे गये और बोले, मालवपति प्रद्योत, क्षमावाणी (उत्ताम क्षमा) के पुनीत पर्वपर आओ गले मिले। विगत सम्बन्धोका विस्मरणकर मालव और वत्सकी मैत्रीके बीज वोये।

प्रद्योत सम्राट् उदयनके ये शब्द सुनकर दो कदम पीछे हट गये और बोले–सम्राट् उदयन, प्रद्योत मालवपति नही, मात्र बन्दी है, हथकड़ी और बेडियाँ उसे सगीत सुनाती है, उसके मस्तक पर लिखा हुआ दासीपति प्रद्योत उसे प्रतिक्षण मानसिक यत्रण ।

दिया करता है, प्रद्योत भूलनेका अभ्यास कर रहा है कि वह शासक है। जाओ सम्राट् उदयन, जाओ, अपने मित्र और अधीनस्थ शासकोंसे गले मिलो और पर्व मनाओ। कारागारमें बन्दीसे गले मिलनेका क्या महत्त्व ? प्रद्योत अपने हाथोसे अपनी गरिमा और गौरवको नष्ट कर चुका है।

सम्राट् उदयन चलकर मालवपति प्रद्योत तक गये और उन्होने अपने हाथोसे मस्तक पर लिखे 'दासीपति प्रद्योत' शब्द पोछ डाले और कहा, मालवपति प्रद्योतको बन्दी कौन कहता है। रौरकपुरकी सैन्य सुरक्षामे आपको उज्जयिनी भेजनेकी पूर्ण व्यवस्था हो चुकी है। सन्देशवाहक सन्देश लेकर मालवकी ओर प्रस्थान कर चुका है कि मालवपति प्रद्योत शीघ्र ही मालवकी राजधानी उज्जयिनी पहुँच रहे है। इस सूचनासे मित्र प्रद्योत, दो लाभ होगे। प्रथम तो राजकुमार गोपालकके विरुद्ध उठनेवाले षड्यत्र स्वतः ही समाप्त हो जायेगे, दूसरे जब आप उज्जयिनी पहुँचेगे तो राजपरिवार, श्रेष्ठि, सामन्त, प्रजाजन सभीको आपका स्वागत कर प्रसन्नता होगी। सन्देशवाहक यह सन्देश भी देगा कि आप शतानीकके अतिथिरूपमे रह रहे है। प्रद्योत सम्राट् शता-नीककी महानताके आगे विवश हो गये और प्रद्योतने अपने सबल बाहु फैला दिये। कुछ दिनो तक सम्राट् प्रद्योत उद्यनके अतिथिके रूपमे रहे। सम्राट् उदयनकी सगीतशालामे उन्हे असीम सुख मिला। जब प्रद्योत उज्जयिनी पहुँचे, सीमा पर राजकुमार गोपालक सहित मालवके श्रेष्ठि और सामन्तोने उनका स्वागत किया। प्रद्योत जब तक वत्सकी राजधानीमे रहे मन-ही-मन सम्राट् उदयनकी भद्रता और विशाल-हृदयकी प्रशसा करते रहे, किन्तु मालवकी सीमामे प्रवेश करते ही उनका अहम् जागृत हो गया और उनका षड्यत्रकारी हृदय कूटनीतिके जाल बुनने लगा।

प्रद्योत जीवनपर्यन्त युद्धमे जूझते रहे, युद्धोमे यौवन बीता—प्रौढ अवस्था भी बीत रही थी, उदयनके बन्दीगृहमे रहनेके कारण उनकी प्रतिष्ठाको क्षति पहुँची थी, उनके नेत्र उदयनको उज्जयिनीके बन्दीगृहमे देखनेको व्याकुल थे। उदयनकी गन्धर्व-कलासे उज्ज-यिनीपति परिचित थे। उन्होने एक विशाल एव सुन्दर गजेन्द्रकी काष्ठ-अनुकृति तैयार करायी और मालवके चुने हुए सैनिकोको हाथी के भीतर बैठाकर विन्ध्याचलके सघन वनमे पहुँचा दिया। सर्वत्र यह प्रसिद्धि करा दी कि विन्ध्याचलके वनमे एक बहुत ही सुन्दर हाथी है। सम्राट् उदयनका हस्ति-प्रेम उन्हे विन्ध्याचलके सघन वन तक खीच ले गया। अनुपम गजेन्द्रको दूरसे ही देखकर सम्राट् प्रमुदित हो उठे, उनकी उँगलियाँ वीणाके स्वर छेडनेमे व्याकुल हो उठी और वे वीणा बजाने बैठ गये, तन-मनकी सुधि जाती रही। काष्ठ-हाथीमेसे प्रद्योतके सैनिक निकले और सरलतासे वत्सराज उदयन बन्दी बना दिये गये।

यौवनश्री रूपसी वासवदत्ताकी देहका स्पर्श कर रही थी। ललित कलाओमे विशेषतः सगीतकलाके प्रति उनका नैसर्गिक प्रेम था। प्रकृतिने उसे सगीतमय स्वर प्रदान किया। स्वरके अनुरूप सगीतशास्त्रकी शिक्षा प्राप्त करनेको वह लालायित थी, किन्तु योग्य सगीताचार्यके अभावमे आकाक्षा पूर्ण न हो सकी। मालव-पति प्रद्योत अपनी रूपसी पुत्रीकी भावनाओसे परिचित थे, वे सोचने लगे—काश, वत्सराज उदयन यदि राजकुमारी वासवदत्ताको सगीतकी शिक्षा देना स्वीकार कर ले तो राजकुमारीकी अतृप्त भावनाओको तृप्ति मिलेगी और गजेन्द्रोको संगीतद्वारा वशीभूत करनेकी कला मालवराज्यको सहज ही प्राप्त हो जावेगी।

सम्राट् प्रद्योतने बन्दीगृहमे प्रवेश किया। वत्सराज उदयन शोकमग्न बैठे वीणाके तारोसे करुणाभरा संगीत ध्वनित कर रहे थे। सम्राट प्रद्योत कुछ क्षण तक सगीतको सुनते रहे। सहसा

उनके मुखसे निकला—अद्भुत-अद्भुत। बन्दी सम्राट् उदयनकी वीणापर थिरकती हुई उँगलियाँ रुक गयी, उन्होने वीणाको बन्दीगृहके एक कोनेमे रखते हुए कहा, मालवपति प्रद्योत क्या उदयनके बन्दी-जीवनसे संतुष्ट नही है। एकाकी जीवनमें वीणाके तारोसे अविरल सूनेपनको सगीत सुनाने दो। उदयन सम्राट्की भाँति जीवन बिताना जानता है और रंककी तरह भी। सुख मनकी स्थिति है प्रद्योत। 'उदयन प्रत्येक दशामे सुखी जीवन बिताना जानता है। आश्चर्य! मालवपति प्रद्योत! बन्दीगृहमे' कहते हुए उदयनने सम्राट् प्रद्योतपर दृष्टि डाली, वह उनके चेहरेको छोड़कर मस्तकपर दृष्टि लगाये देखता रहा, प्रद्योतका हाथ स्वयं मस्तकपर चला गया। उन्हे लगा जैसे उनके मस्तकपर अभी भी दासीपति प्रद्योत अंकित है। उनका आत्म-विश्वास डिगने लगा। किन्तु उन्होने वाणीको संतुलित कर कहा, वत्सराज उदयन! मेरी एक कामना है, मेरी पुत्रियोमे एक कानी, कुरूप पुत्री है किन्तु सगीतपर वह प्राण न्यौछावर करती है, कृपया उसे गन्धर्व-विद्यामे पारगत कीजिये, वीणा सिखाइये। उदयनका हृदय मालवपतिके इस प्रस्तावको स्वीकार करनेकी स्थितिमे नही था, वे इस प्रस्तावको अस्वीकार करना चाहते थे, उन्होने इस प्रस्तावको अस्वीकार करने हेतु अधर खोले और प्रद्योतकी ओर देखा। प्रद्योतका ध्यान उदयनकी ओर नही था, वे टकटकी लगाये सम्राट् उदयनकी वीणाको देख रहे थे। उदयनको लगा, मालवपति प्रद्योतका प्रस्ताव अस्वीकार करनेका अर्थ होगा—प्राणोसे प्यारी वीणासे विछोह। बहुत सम्भव है, प्रस्तावके अस्वीकार करते ही प्रद्योत वीणाके टुकड़े-टुकडे कर देगा। वीणाके प्रति असीम आसक्तिके कारण उदयनने अपनी इच्छाके विपरीत प्रद्योतसे कहा—सगीतमे मेरे प्राण बसते है, इस एकाकी जीवनमे एक क्या अनेको शिष्योंको गन्धर्व-विद्यामे पारगत बनानेकी भावना रखता हूँ।

सम्राट् प्रद्योतने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—बहुत-बहुत

धन्यवाद उदयन, किन्तु मेरी कन्या कुरूपताके कारण आपके आकर्षक व्यक्तित्वके आगे आनेमे हीनत्व भावनासे पीडित होगी, इसलिए इस बन्दीगृहको पर्देसे दो भागोमे विभक्त किया जावेगा, उसे देखनेका प्रयत्न न करे।

प्रद्योतने अपनी अनिद्य सुन्दरी पुत्री वासवदत्तासे कहा, बेटी, उदयन कुरूप है, पर सगीतकलाकी साकार मूर्ति है। प्रकृतिने उन्हे सगीतका अद्भुत ज्ञान प्रदान किया है किन्तु शरीरसे कोढी है, गलित कुष्ठके कारण देह कुरूप और घिनौनी है, उन्हे देखनेका प्रयत्न न करना, अन्यथा तुम्हारा हृदय घृणा और पीडासे भर जायेगा।

मालवके बन्दीगृहमे वीणाके मार्मिक स्वर गूँजने लगे, वासवदत्ता सगीत सीखनेकी असीम निष्ठाके कारण वीणावादनमे प्रगति करने लगी। तीन माहके अल्पकालमे ही वीणापर शुद्ध राग-रागनियाँ निकालने लगी। उस नैसर्गिक श्रद्धाने गुरुदर्शनके लिए उसके नेत्रोमे व्याकुलता और तरलता भर दी, उसके चंचल नयन उदयनको देखनेको व्याकुल हो उठे। किन्तु वह विवश थी, इसलिए नही कि उसका गुरु कुष्ठ रोगसे पीडित है, पर प्रद्योतके नियन्त्रणमे रहनेके कारण उसमे इतना भी साहस नही था कि वह आवरण हटा सके अथवा उसके पार झांक सके।

एक सुहानी शीत सन्ध्यामे सम्राट् उदयनने सबसे मधुर राग मालकोस बजाना प्रारम्भ किया और राजकुमारी वासवदत्तासे अनुसरण करनेको कहा। वासवदत्ता गुरुके दर्शनोको व्याकुल थी, वह पर्दे तक हाथ ले जानेका प्रयत्न करती, किन्तु प्रद्योतकी क्रोध-भरी मुद्रा उसकी आँखोमे तैरने लगती और उसका बढा हुआ हाथ पीछे हट जाता। उसने मालकोसकी अपेक्षा भैरवीके स्वर वीणापर बजाना प्रारम्भ कर दिया। सम्राट् उदयनने वीणा बजाना बन्द कर दिया और कहा, देवि, सन्ध्यामे भैरवीके स्वरोको छेडना,

सगीतका असम्मान है। भैरवी मध्यरात्रिके पश्चात् ही बजाया जा सकता है। मै मालकोसके स्वर छेडता हूँ, आप ध्यानपूर्वक अनुसरण कीजिये। वासवदत्ताने पुन: वीणापर भैरवीके स्वर बजाना प्रारम्भ कर दिया। अनेको बार वासवदत्ता द्वारा भैरवीके स्वरोको छेडनेके कारण उदयन खीज उठे और उन्होने क्रोधभरे स्वरमे कहा—प्रद्योतकी कानी पुत्री, तू जीवनपर्यन्त सगीत नही सीख सकेगी। राजकुमारी वासवदत्ता यह सुनकर आश्चर्यचकित रह गयी। उसे सहज ही अनुमान हो गया, पर्देके दोनो ओर रहस्य है, जिससे दोनो अपरिचित है। वह इस रहस्यको अनावृत करनेके लिए व्याकुल हो उठी, उसने कृत्रिम क्रोधभरे स्वरमे कहा—कुष्ठी गुरुकी असभ्यताभरी ताड़नासे तो राजकुमारी वासवदत्ता संगीत-से अनभिज्ञ रहना ही अच्छा समझती है। सम्राट् वासवदत्ताके शब्द सुनकर क्षुब्ध हो उठे और उन्होने रोषभरे स्वरमे कहा, देख, वत्सराज उदयनके कुष्ठी शरीरको देख और उन्होने तेजीसे पर्दा खीच दिया।

एक-दूसरेका रूप देखकर वे दोनो विस्मित रह गये, निर्निमेष एक-दूसरेको देखते रहे, वाद्य मौन पड़े थे किन्तु हृदय-वीणाके तार झंकृत होने लगे। प्रणयकी भाषा सदैवसे ही मौन है। सम्राट् उदयनने बन्दीगृहमें व्याप्त निस्तब्धता भग की और बोले—वासव-दत्ता! उठाओ, अपनी वीणाको उठाओ, इस मूक वीणाके तारोको ऐसा स्वर प्रदान करूँगा कि मृतको भी सजीवन दे। किन्तु वासवदत्ताने अधर तक नही खोले, वह निरन्तर वन्दीगृहकी भूमि-की ओर निहारती रही।

सम्राट् उदयनने वासवदत्ताके हाथोमें स्वय वीणा देते हुए कहा—देवि! मेरी हृदय-वीणाके सोये हुए तारोको झकृत करें। वासवदत्ताने अपनी कलात्मक मेहदी रची सुकोमल हथेलियोसे वीणाको पकड़ा, उनकी सुकोमल उँगलियाँ उदयनके हाथोसे टक-

रायी, दोनोका हृदय विचित्र-सी अनुभूतिसे भर गया। इस घटनाके कुछ दिन बाद ही वन्दीगृह प्रणय-गीतोसे गूँजने लगा, सम्राट् उदयन भूल गये कि वे विशाल साम्राज्यके स्वामी है। वासवदत्ता भूल गई कि वह प्रद्योत-जैसे भयकर शासककी पुत्री है। वे प्रेमी थे, मात्र प्रणयपथके यात्री थे। प्रणय एक यात्रा है, जिसका कोई गतव्य नही। कितना भी इस पथपर चलो, इस पथके यात्रीकी जब भी आँख खुलती है, उसे लगता है वह जहाँसे चला है वही है। वही प्यास, वही अतृप्ति। सम्राट् उदयनकी प्रणयसे आवृत आँखकी झपकी खुली, कल्पना-जगतसे उन्होने जब यथार्थके धरातलको छुआ तो उन्हे बोध हुआ कि उनका प्यार पराश्रित है, किसी भी क्षण मालवपतिके ज्ञात होते ही इस प्रणयका अन्त हो जायेगा। बहुत सम्भव है प्राण भी गँवाना पडे, उदयन वन्दीगृहसे भागनेकी योजना बनाने लगे, इस योजनामे सहायक हुई राजकुमारी वासवदत्ता। वीतभय पहुँचकर सम्राट् उदयनने वासवदत्तासे पाणि-ग्रहणकी घोषणा कर दी। सम्राट् प्रद्योत अपमानका घूँट पीकर रह गये, उनके मित्र और अधीनस्थ राजाओने समझाया—सम्राट् उदयन दुर्लभ रत्न है, सम्पूर्ण भारतवर्षमे उनके मोहक व्यक्तित्वके आगे किसीका व्यक्तित्व नही ठहरता, उनसे श्रेष्ठ वर वासव-दत्ताके लिए पाना सम्भव नही। सम्राट् प्रद्योतने इस विवाहकी अनुमति दे दी और मालवपतिकी ओरसे बहुमूल्य भेट लेकर राज-कुमार गोपालक इस विवाहमे सम्मिलित हुए।

सम्राट् उदयन सफलतापूर्वक राज्यसचालन करते रहे और भोगोको भोगते रहे। भोग एक उपलब्धि है और क्षणिक, भोगोमे मन अधिक काल तक नही ठहरता। दृष्टि भोगोमे जब तक सुख मानती है तब तक भौतिक उपलब्धियाँ मानव-हृदयको आकर्षित करती है किन्तु दृष्टिके बदलते ही सृष्टि बदल जाती है।

एक दिन उदयन और वासवदत्ता एक सगीतगोष्ठीमे बैठे थे।

महाराज उदयन वीणा बजा रहे थे, महारानी वासवदत्ता भी उनके साथ वीणावादन कर रही थी। अतिथि कलाकार एवं श्रोता मन्त्रमुग्ध थे। वीणाके सगीतका माधुर्य चरमोत्कर्षपर पहुँचा। सहसा वीणाका एक तार टूट गया, सगीत बिखर गया। वासवदत्ताने अपनी वीणा देते हुए सम्राट्से कहा, स्वामिन्! इस वीणाको बजाकर उपकृत करे।

वीणाके तार टूटते ही सम्राट् उदयन एकाएक गम्भीर हो गये, गहन उदासी छा गयी, जैसे वीणाके निर्जीव तार टूटनेसे उनकी हृदय-वीणाके साथ कोई गहन सम्बन्ध हो। वासवदत्ताने पुनः अपनी बात दोहरायी। सम्राट् उदयनकी बिखरी हुई चेतना सजग हो उठी और बोले—देवि! वीणाके तार टूटनेसे जीवनका सगीत बिखर गया। ध्वनि और वादककी कला जीवित सगीतको जन्म देनेमें असमर्थ है। देवि जीवनके बिखरनेपर क्या होगा? जीवनके तार निर्बल होते-होते टूट जायेगे। इन तारोको टूटनेके पूर्व जीवनका अर्थ खोजना होगा। गन्तव्य पाना होगा। उन्हे अन्तः-प्रेरणा हुई, जैसे कोई मौन भाषामे कह रहा हो–तीर्थंकर वर्द्धमान-का समवशरण जन्म-मृत्युके बन्धनोसे मुक्तिकी औषधि बाँटता अलख जगाता फिर रहा है। उदयन जाओ, सर्वज्ञकी शरणमें जाओ। दीर्घकाल तक नश्वर स्वरोसे शाश्वत संगीत बिखेरनेका असफल प्रयत्न करते रहे, अब प्रभुकी शरणमे जाओ। आत्म-सगीतके वे श्रेष्ठ-गायक है, श्रेष्ठ साधक है। उदयन कुछ काल तक उदासीन भावसे राजकार्य सम्हालते रहे और एक दिन वीतभयके सौभाग्यसे तीर्थंकर महावीर आये और आत्मसगीत सिखाने युगके श्रेष्ठ वीणावादनको अपने चरणोमे आश्रय प्रदानकर साथ ले गये।

●

मगधसम्राट् अजातशत्रु युवावस्थाको प्राप्त कर चुके थे। उनके शैशवमे एक विचित्र घटना घटित हुई थी। उनकी माता मगधकी सम्राज्ञी चेलना राज्यके प्रति अत्यधिक निष्ठावान थी। गर्भावस्थामे अशुभ दोहदोके कारण वह अपनी भावी सतानके प्रति उद्विग्न हो उठी। उन्होने दैवज्ञको बुलाकर अपने भावी अपत्यका भवितव्य जानना चाहा। ज्योतिषियोका यह कथन कि आगन्तुक पुत्र मगधके विनाशका कारण होगा, रानी चेलनाके मनस्तापका हेतु बन गया। मगधराज्यकी कल्याण-कामनामे रानीको सद्य.जात पुत्रको उद्यानमे फिकवा देनेका निर्णय लेना पडा। जब सम्राट् श्रेणिकको ज्ञात हुआ कि नवजात राजकुमारको फिकवा दिया गया है तो वे अत्यन्त दु.खी हुए और उन्होने चेलना से कहा, देवि! सन्तान कभी अशुभ नही होती। भविष्यवेत्ताओका इस सन्दर्भमे विश्वास भी नही करना चाहिए। सन्तान यदि माँ-बापको अशुभ हो, तो भी उसका त्याग करना धर्म और नीतिके विपरीत है। सम्राट् श्रेणिक स्वयं जाकर पुत्रको उद्यानसे ले आये। राजकुमार कुणिक अजातशत्रु पराक्रमी और महत्वाकाक्षी थे। सम्राट् श्रेणिक उन्हे बहुत प्यार करते थे। मगधपति अपने महत्वाकाक्षी युवकका राज्याभिषेक कर तीर्थंकर प्रभुके चरणोंमे धर्मसाधनाके शुभ अवसरकी प्रतीक्षा कर रहे थे। कुणिकको उन्होने शासक नियुक्त किया था और कुणिकके राज्य-सचालनसे अत्यधिक प्रभावित थे। किन्तु एक दिन कुणिक अजात-शत्रुने पाँचसौ विश्वासपात्र सशस्त्र योद्धाओ सहित मगधकी

राजधानी राजगृहीमे प्रवेश किया। रथोंपर मगधके ध्वज फहरा रहे थे और अग्रपक्तिके प्रथम रथमे राजकुमार कुणिक अजातशत्रु बैठे हुए थे।

मगधकी सीमाओपर सशस्त्र रक्षकोकी पक्तियाँ नियुक्त थी। स्थान-स्थानपर सैनिक-शिविर बने हुए थे। मगधकी सीमाएँ चारो ओरसे सुरक्षित थी, किन्तु मगधके ध्वजोंको देखकर एव अग्रिम रथमे कुमार कुणिक अजातशत्रुको देखकर सैनिक शीश झुकाकर उनका अभिवादन कर रहे थे। राजकुमार कुणिकने दुर्ग-मे प्रवेश किया तो रक्षकदलने उन्हे सम्मान प्रदान किया, किन्तु योद्धाओंके प्रवेश करनेके पूर्व ही रक्षक-दलने द्वार पर चमचमाती तलवारोसे योद्धाओंको रोक दिया। राजकुमार कुणिकने पीछे मुडकर देखा और कहा--राजाज्ञा है, प्रवेश दो। राजकुमार कुणिककी अवज्ञा करनेका कोई कारण नही था, किन्तु रक्षकदल इस प्रकारके सैनिकसहित दुर्गमे प्रवेशसे चौक उठा।

सम्राट् श्रेणिकने अजातशत्रु कुणिकको देखा तो प्रमुदित हो उठे और प्यारभरे स्वरमे कहा—आओ कुणिक, आओ अजातशत्रु। किन्तु कुणिकने रोषभरे स्वरमे कहा, राजकुमार अजात नही, कुणिक नही, एक विद्रोही राजकुमार मगधकी सत्ता प्राप्त करने आया है। ससारके सभी रिश्ते मिथ्या है, न किसीका कोई पुत्र है और न पिता। वृद्ध अवस्थामे भी राजसत्तासे लिपटे हुए पिताके प्रति मेरे हृदयमें कोई सम्मान शेष नही है। सैनिको! सम्राट् श्रेणिकको अविलम्ब बन्दी बनाओ। सम्राट् श्रेणिक बन्दी बना लिये गये।

मगधके दुर्गमे राजकुमार कुणिकके प्रवेश करते ही दुर्गका प्रधान रक्षक चौका। कुणिकके दुर्गमे प्रवेश करनेके पश्चात् वह एक सहस्र सैनिको सहित आया। राजकुमारकी उसने अवज्ञा नही की थी, किन्तु दुर्गकी रक्षा उसका कर्तव्य था। दुर्ग-रक्षकोने

कुणिक और उसके सैनिकोको चारो ओरसे घेर लिया। कुणिक विवश हो गया। वह स्वनिर्मित जालमे फँस चुका था। वह सोचने लगा—युद्ध करना व्यर्थ है। सकटकी सूचना प्राप्त होते ही दुर्ग सैनिकोसे भर जायेगा, वह जीती बाजी हार चुका है। महत्वाकाक्षा और दु साहसने उसके भविष्यको अधकारमय बना दिया है और अब उसे जीवनभर बन्दी जीवन व्यतीत करना पडेगा। कौन जाने, प्राणोसे भी हाथ धोना पडे।

सहसा मगधपति बन्दी सम्राट् बिम्बसारका स्वर गूँजा, इस दुर्गमे तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर आहार कर चुके है, इस दुर्गमे रक्तपात नही होगा। कुणिक अजातशत्रुको मै मगधका शासक नियुक्त करनेका निर्णय कर चुका हूँ, मेरे निर्णयपर मगधकी पवित्र मुद्रा भी अकित हो चुकी है। मगधपति एक बार निर्णयकर परिवर्तन करना नही जानते। यह दुर्भाग्यकी बात है कि मगधका लाडला कुणिक राजशासनकी बागडोर अविवेकपूर्ण रीतिसे प्राप्त कर रहा है। मगधपति अजातशत्रुके प्रत्येक आदेशका पालन हो। भावुकतामे सम्राट्के अश्रु झलक आये। दुर्ग-रक्षकोकी उठी हुई तलवारे म्यानमे चली गयी।

कुणिक अजातशत्रुकी विचित्र दशा थी। तीव्र गतिसे विचार उसके मस्तिष्कमे उठ रहे थे। हृदय कहता था कि ऐसे स्नेही पिताको बन्दी बनाना अक्षम्य अपराध है। उसका कुटिल जाल दुर्ग रक्षकोने तोड दिया, यदि सम्राट् श्रेणिक कुछ क्षण ही मौन रहते तो कुणिकका मृत शरीर भूमि पर पडा दिखायी देता। कुणिक, पिताके पैरोमे गिरकर क्षमा-याचना कर, वे तेरे जन्मदाता हैं। और स्वार्थी बुद्धि कह रही थी, कुणिक भावुकताका समय नही है। यदि सम्राट्की क्रोधाग्नि कही भडक उठी तो जीवनपर्यंत कष्ट उठाना पडेगा। उसने रोषभरी वाणीमे कहा—दुर्गरक्षक लौट जाये और आगामी आदेशकी प्रतीक्षा करें।

कुणिक अजातशत्रुने अपनी निर्ममताका परिचय दिया और दुर्गके अन्तिम छोरपर बने एक लौह्-शलाकाओवाले विशाल-कक्षमे सम्राट् श्रेणिकको बन्दीके रूपमे रखा। सम्पूर्ण मगधमे घोषणा करवा दी—मगधसम्राट् श्रेणिक-बिम्बसार असाध्य रोगसे पीडित हैं। इसलिए वे कुणिक अजातशत्रुको मगधका शासक मनोनीत करते है। अजातशत्रुने अपनी निर्ममताकी पराकाष्ठा कर दी। उसने लौह्-पिंजरेमें सम्राट् श्रेणिकके राजकीय परिधान, आभूषण, अस्त्र-शस्त्र भी टँगवा दिये, ताकि वे मानसिक रूपसे अशान्त रहे। सम्राट् श्रेणिक-बिम्बसार बन्दीगृहमे दिन व्यतीत कर रहे थे। सम्राट् सोचते—जैसे मै पिंजरेमे बन्दी हूँ वैसे ही विश्वरूपी बन्दीगृहमे मानवमात्र बन्दी है। आश्चर्य है, स्वार्थोंपर रखी हुई सबधोंकी नीव कैसे सुरक्षित है ? संसार असार है, एक स्वप्न है, एक छलना है।

महारानी चेलनाकी पीडाका पारावार नही था, न जाने कौन-सी अज्ञात भावनाएँ अजातशत्रुको चेलनाको बन्दी बनानेसे रोके हुई थी। वह महारानी चेलनाको भी बन्दी बनानेकी कामना रखता था। समय बीत रहा था, एक दिन सम्राट् कुणिक भोजन कर रहे थे, समीप ही माँ चेलना बैठी थी। इसी क्षण सम्राट् कुणिकका अल्पवयस्क पुत्र आया और कुणिकके साथ भोजन करने लगा। स्वर्ण-कटोरेमेसे अल्पवयस्क राजकुमारने खीर खायी। खीरका कुछ भाग कुणिकके पुत्रके मुँहसे खीरके कटोरेमे आ गिरा। सम्राट् कुणिक खीरपात्रको थालीसे पृथक् करनेका विचार करने लगे, किन्तु पुत्र-स्नेहके कारण उसीमेसे खीर खाने लगे। रानी चेलना इस दृश्यको देख रही थी।

सम्राट् कुणिक चेलनासे बोले—माँ, प्रकृतिने पिता-पुत्रके बीच कैसा पुनीत सम्बन्ध स्थापित किया है कि कुणिक जैसा सम्राट् जूठा भोजन प्रसन्नतापूर्वक कर रहा है।

यह सुनकर चेलनाकी स्मृति सुदूर बत्तीस वर्ष पूर्व चली गयी, उनकी आँखोके सामने एक दृश्य तैरने लगा। आँखोसे टप टप टप-कर आँसू टपकने लगे। कुणिकने कहा—माँ, अभी कोई ऐसा प्रसग तो उपस्थित नही हुआ, जो आप फूट-फूटकर रो रही हैं।

पुत्र—घटना घटित न होनेपर, दृश्य नेत्रोके सामने न होनेपर भी कभी-कभी स्मृतियाँ सजीव हो उठती हैं, जो मानव-हृदयको कभी हँसाती है, कभी रुलाती है। माँ, आपके आँसुओमे भी कोई सुधियोका भरा इतिहास छुपा है?

चेलनाने कहा—हाँ पुत्र, मुझे वर्तमान मगधपति सम्राट् कुणिक अजातशत्रुके बाल्यकालकी स्मृति हो आयी। आजसे बत्तीस वर्ष पूर्व जब तुम तीन वर्षके सुकुमार शिशु थे, तब तुम्हारी मध्यमा अगुलीमे एक भयानक फोडा हुआ था। तुम पीडासे चीखते, कराहते थे। माँके आँचलका दूध भी तुम्हारी पीडाको शात करनेमे असमर्थ था। मगधके सुयोग्य चिकित्सक भी तुम्हारी पीडाको दूर करनेमे असमर्थ रहे। रात-रातभर तुम्हे नीद नही आती थी। तुम्हारी पीडाका उपचार एकमात्र तुम्हारे पिता सम्राट् श्रेणिकके पास था। तुम्हारे पिता तुम्हारी अगुलीको मुँहमे रखकर चूसते, दुर्गन्धयुक्त पीप और रक्तको बार-बार थूकते। बार-बार मुँहमे उँगली रखते, तब तुम्हे नीद आती, शाति मिलती। वह दृश्य आज मेरी आँखोमे तैर रहा है और वात्सल्य और करुणापूरित भावनाओके स्वामी सम्राट् आज लौह-पिजरेमे कैद हैं। कुणिक, क्या आश्चर्य, कल तुम्हारा लाडला पुत्र भी इसी इतिहासको फिर दोहराये। सम्राट् श्रेणिक ज्ञानके भण्डार हैं, उन्होने तीर्थकर वाणीके अमृतको बार-बार पिया है, आत्माकी अनुभूतिको पहिचाना है। वे शातिपूर्वक अपनी जीवन-यात्राको व्यतीत कर देगे। यदि इतिहासकी पुनरावृत्ति हुई तो तुम्हारी क्या दशा होगी पुत्र कुणिक!

सम्राट् कुणिक सुनकर विह्वल हो उठे और बोले—माँ, क्या यह सत्य है ?

माँ चेलनाने कहा—"पुत्र-कुणिक अजातशत्रु असत्यने चेलनाकी जिह्वाको छुआ तक नही है। तुमने मगधके उत्तराधिकारी सम्बन्धी प्रालेख देखे होंगे, कुणिक, वे तुझे उत्तराधिकारी बनानेका निश्चय कर उसपर मगधकी मुद्रा लगा चुके थे, शुभ मुहूर्तकी प्रतीक्षा थी—पर होनी हो चुकी।"

कुणिकने कहा, पर माँ, मेरा जन्म होते ही सम्राट्ने मुझे जगल मे फिकवा दिया था। सम्राट् कुणिक कुछ आगे कहना चाहते थे, इसी बीच चेलनाने कहा—कुणिक, मगधपति यदि उदार न होते तो कुणिक तुम मगध या किसी अन्य राज्यमे भिक्षावृत्तिसे पेट पाल रहे होते। वह अपराध तुम्हारी माँ चेलनाका था। सम्राट्को ज्ञात होते ही वे स्वय वनमे गये और स्नेहवश तुम्हे ले आये। काश ! पिता पुत्रकी तरह निर्मम होता तो आज मगधकी परंपरा कलकित न होती। यदि इसी प्रकार एकके बाद दूसरी पीढी ऐसी घटनाओंको दोहराती रही तो मगधकी पुनीत परम्परा सदा-सदाके लिए कलकित हो जायेगी। कुणिक, यदि मगधकी राजमाता चेलना श्रेष्ठि और सामतोके द्वार खटखटाये और कहे कि मगधपति लौह-पिजरेमे कैद है तो स्वामिभक्त सामंत तुम्हे चैनसे शासन करने देगे ! पर मगधपति बिम्बसारका आदेश है कि पुत्रका अपराध वास्तवमे पिताका अपराध है, उसे शातिपूर्वक राज्य करने दो। मगधमे जितनी सम्पन्नता है उससे अधिक मगधपतिके हृदयमे करुणा है। वे मानवताकी साक्षात् मूर्ति है।

कुणिक द्रवित हो उठा और बोला—यह सब क्या कह रही हो माँ ? और सम्राट् कुणिक अजातशत्रु बालकोकी भाँति फूट-फूटकर रोने लगे। कुणिकको लगा कि उसका अल्पवयस्क पुत्र युवा हो गया है और उसने कुणिकको बन्दी बनाकर लौह-शृंखलामें

जकड़ दिया है। कुणिक जोर-जोरसे चीखने लगे, इस पुनीत वंशमें ऐसी विकृत परम्परा जन्म नही लेगी। और वह द्रुत गतिसे बन्दीगृहकी ओर चल दिया।

सम्राट् श्रेणिक-बिम्बसार लौह-पिजरेमे एक छोरसे दूसरे छोर तक चक्कर काट रहे थे। समस्त बाल श्वेत हो गये थे। मानसिक और शारीरिक कष्टने उनकी देहको जर्जर कर दिया था। उन्होने देखा, अजातशत्रु भागता चला आ रहा है। उन्हे लगा—कष्टोकी शृखलामे वृद्धि होने जा रही है। उन्होने सहसा बाहर खडे पहरेदारके हाथसे खड्ग खीच ली और 'जय तीर्थकर', 'जय महावीर' कहकर अपनी मम्पूर्ण देह खड्ग पर डाल दी। बन्दीगृहमे रक्त ही रक्त फैल गया।

कुणिक यह देखकर चीखे, पिताश्री यह क्या किया ? मगधपति यह क्या किया ? अपने नराधम पुत्रको प्रायश्चित्त करनेका अवसर तक प्रदान नही किया। वह फूट-फूटकर बालको-सा रोने लगा। पिजरेके द्वार खोले गये, सम्राट् श्रेणिकका शीश चेलनाकी गोदीमे रखा हुआ था और सम्राट् बिम्बसारके पॉव अजातशत्रुके हाथो मे थे। महारानी चेलनाके हृदयमे स्मृतियाँ सजग हो उठी। सम्राट् श्रेणिक मगध जैसे विशाल राज्यका शासक आत्महत्या करनेपर विवश हो सकता है और लाडप्यारमे पला पुत्र कुणिक अपने जन्मदाताको बन्दी बना सकता है। संसारके नश्वर रिश्तोका इससे बडा प्रमाण और क्या हो सकता है ? इस ससारमे सभी कुछ सम्भव है।

सम्राट् श्रेणिक-बिम्बसारकी नश्वर देह चन्दन-चितामे धू-धू कर जल रही थी।

चेलनाने कुणिकसे कहा—पुत्र, तीर्थंकर महावीरके दर्शनोको चल। कुणिकने कहा—नही माँ, नही, शास्ता महावीरके दर्शनार्थ नही जाऊँगा। माँ, शास्ता महावीरकी आँखोमे विशेष प्रकार

की चमक है, अद्‌भुत आकर्षण है। भौतिक सुख उनके दर्शनमात्र-से साँसे तोडने लगते है, इन्द्रियजनित सुख, आकाक्षाएँ मृतप्राय हो जाती हैं। माँ, उनके दर्शन गौरव और दुर्लभ उपलब्धि है किन्तु माँ, मेरी आकाक्षाएँ मगधके विशाल साम्राज्यके विस्तार और व्यवस्थामे सोई हुयी है, मै भारतकी मगध-राज्यकी सीमामे बद्ध करना चाहता हूँ, शास्ताके दर्शनसे मेरी आकाक्षाएँ रह जायेंगी। शास्ताके चरणोंमे जाकर माँ, मेरा हृदय संसारसे उदासीन और शस्त्र अहिसक हो जायेंगे।

महारानी चेलनाने शोक-काल राजप्रासादमें बिताया और उसके पश्चात् वे परमज्योति तीर्थकर महावीरके समवशरणमें जाकर महासती चन्दनबालासे प्रव्रज्या ग्रहणकर ससारके सुखोंसे विमुख हो गयी।

●

पच्चीससौ वर्ष पूर्व भारतवर्षके मानचित्रपर शायद ही कोई ऐसा स्थान हो, जहाँ ज्योतिर्मय भगवान महावीरने पदार्पण न किया हो। ज्ञातृखण्ड वनसे ऋजुकूला सरिता और ऋजुकूलाके तटसे मध्यमा पावातककी यात्रामे, गृह-त्यागसे केवलज्ञान और केवलज्ञानप्राप्तिसे निर्वाण-स्थलतक पहुँचनेमे ज्योतिर्मयको ४२ वर्ष लगे। बयालिस वर्ष तक प्रभु अनवरत भ्रमण करते रहे। विश्वके इतिहास और सस्कृति एव सभ्यताके विश्वकोषमे तीर्थंकर वर्द्धमान एक ऐसा नाम है, जिसका कोई उपमान नही है। तीर्थंकरका व्यक्तित्व अनुपमेय होता है। सदियोसे विश्व प्रतीक्षा करता है, कोटि-कोटि माताएँ प्रसव-पीडा उठाती है, तब कही विश्वको मानवताको दुर्लभ विश्व-मानवके दर्शन होते है।

ज्योतिर्मय तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामीने युगके हिंसासे जलते हुए भालपर अहिंसाके शीतल चन्दनका लेप किया। परस्पर उपकार करते हुए जीनेकी वास्तविक कला सिखायी। व्यक्तिगत सुखोकी लोक-कल्याणपर समर्पित होनेका मगल-पाठ पढाया। राजगृहीसे प्रभुने मध्यमा पावाकी ओर अपने विशाल समवशरण सहित प्रस्थान किया। पावामे उस समय महाराज हस्तिपाल राज्य करते थे। जब उन्हे ज्ञात हुआ कि तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामीका समवशरण पावाकी ओर प्रस्थान कर चुका है तो उन्हे असीम सुख मिला और वे प्रभुके समवशरणके स्वागतकी तैयारीमे सलग्न हो गये।

महाराज हस्तिपालने पावाके प्रमुख राजपथोसे लेकर वीथिकाओतकको अलकृत करवाया। दुर्गसे लेकर कुटियोतकको

पुतवाया। स्थान-स्थानपर स्वागत-द्वार निर्मित करवाये, प्रभुके आगमन-दिवसपर सम्पूर्ण वीथिकाओ और पथोपर चन्दन मिश्रित जल छिड़कवाया, समस्त वातावरण सुवासित हो उठा।

इन्द्रके दास कुबेरने विशाल समवशरणकी रचना की। समवशरणकी भव्यताको देखकर सभी आश्चर्यचकित थे। तीर्थंकर महावीरकी अन्तिम दिव्य-ध्वनि प्रस्फुटित हुई।

कार्तिक कृष्ण अमावस्याकी रात्रिमे पावाके राजोपवनके सुरम्य सरोवरके निकट तीर्थंकर प्रभु शुक्लध्यानमे लीन थे। सुरभित कमलोकी कतारबद्ध पक्तियाँ उसके कमलाकर नामको सार्थक कर रही थी। मकरन्दपर लुब्ध भ्रमर कमल-दलतक गये। किन्तु आज उद्यानमे, जल-सरोवरके समीप एक सुवास व्याप्त थी। कमल भ्रमरोको आकर्पित करनेमे असमर्थ रहे, भ्रमर कभी सरोवरमे कमल-दलतक जाते, फिर लौटकर उद्यानमे चक्कर काटते। आज भ्रमरोके दल भ्रमित थे कि यह कौन-सी गध है जो पुष्पोके परागके प्रति उनके स्वाभाविक आकर्षणको तोड़ रही है। वे रात्रिभर गुजार करते रहे, पर उद्यानमे व्याप्त सुरभिका ओर-छोर न पा सके।

चन्द्रमा स्वाति नक्षत्रमे था। यामिनी भी तीर्थंकर महावीरके साथ ही निर्वाणके लिए परिकरबद्ध थी। अमावस्याके अंधकार-भरे गगनमे सहस्रो तारे जागे, एक साथ टूटे, और अवनि-अम्बर एकसाथ कुछ क्षणोके लिए प्रकाशसे जगमगा उठा। यह इस बातका सकेत था कि तीर्थंकर वर्द्धमान महावीरकी आत्मा स्व-आभासे पूर्ण दीप्त हो उठी है और ऊर्ध्वगमन कर रही है। इस अभूतपूर्व और अप्रतिभ क्षणमे प्रभुके दर्शनोसे नेत्रोको तृप्तकर लेनेकी लालसासे मेघ-समूह गगनमे एकत्रित हो गये। अब इम

तीर्थंकरकी साक्षात् प्रतिमाका अभिषेक न कर सकेगे, इस विचारसे वारिदोकी घनीभूत पीडा जल-बिन्दुओके रूपमे साकार हो उठी। कुछ क्षणोके पश्चात् सर्वत्र अन्धकार छा गया। इस अद्भुत घटनासे प्रभावित हो पावा-निवासी हाथोमे दीप लिए निर्वाण-स्थलपर आये। तीर्थकरकी आत्मा सिद्धत्वको प्राप्त कर चुकी थी। देहकी नश्वरताको साक्षी खोजनेकी आवश्यकता नही रह गयी थी। यह क्षण सुख-दुःखभरी अनुभूतिका अद्भुत क्षण था। उपस्थित लोगोमे कतिपय आत्मदृष्टि इस अपूर्व अवसरसे प्रफुल्लित हो विचार कर रहे थे, तीर्थकर अपने अन्तिम गतव्यको आत्माकी शुद्धतम अवस्थाको प्राप्त कर चुके हैं। ससारके प्रति ममत्वकी दृष्टि रखनेवाले विचार कर रहे थे, विश्वकी पीड़ित साँसोको जो सम्बल देते थे, वे तीर्थकर प्रभु चले गये।

धीरे-धीरे कार्तिक कृष्ण अमावस्याका अन्धकार विलीन हो गया। सूर्यकी सुहागिन रश्मियोने प्रभुके चरणोमे ज्योति बिखेरी। धीरे-धीरे वह ज्योति प्रभुके देहपर, फिर सम्पूर्ण विश्वमे फैल गयी।

●